15314

ज्ञान बारह खड़ी

श्री रसिक अली जी महाराज कृत

श्री रामवल्लभाशरणाश्रम
कढ़ीवालों की बगीची, ...
जयपुर सिटी, (राजस्थान)

टीकाकार:—

श्री १०८ श्री राजकिशोरीवर शरण जी महाराज

(गोस्वामी परमानन्द जी)

भूमिका

अनन्त श्री साकेताधीश सर्वान्तर्यामी जगदाधार जगत नियन्ता पारब्रह्म श्री सीताराम जी महाराज अपनी कृपा कटाक्ष द्वारा, किसी न किसी परिकर से ज्ञान वैराग्य भक्ति का उपदेश कराते ही रहते हैं।

जिनमें से हमारे रसिकाचार्य श्री श्री १००८ श्री रसिक अली जी महाराज भी हैं। जिन्होंने स्वयं २४ ग्रंथ निर्माण किये, उन ग्रन्थों में से एक छोटा सा ज्ञान बारह खड़ी नाम का ग्रन्थ भी है। जो कि ज्ञान भक्ति वैराग्य से ओत प्रोत है : यह ग्रंथ मेरे हाथ में भी आया, किन्तु इसके गूढ़ विषयों को मैं यथार्थ समझ नहीं पाया।

मेरे मन में उत्कट इच्छा हुई कि मैं अपने आचार्य श्री गुरुदेव महाराज से प्रार्थना करूँ कि वे इस ग्रंथ की भी टीका करदें, ताकि सर्व साधारण जन इनके भावों को अच्छी तरह समझ जाँय।

मेरे प्रार्थना करने पर श्री महाराज जी ने टीका करना अपनी कृपा वारनिधि द्वारा स्वीकार कर ही लिया और कुछ दिन बाद में टीका कर ही दी। यह ग्रंथ साधारण सरल भाषा में ही लिखा गया है, जिसको सब कोई पढ़ सकें और उपदेश ग्रहण कर सकें किन्तु इस टीका के हो जाने से अब पूर्णतया श्री रसिकअलीजी महानुभाव के भावों को भक्त जन समझ जायेंगे।

मैं आशा करता हूँ कि जैसा आनंद मुझको इस ग्रंथ के देखने से प्राप्त हुआ उसी तरह सबको प्राप्त हो जाय। मेरे इस प्रयास से अगर आप सबको कुछ भी आनंद आया तो मैं अपने को कृतार्थ समझूंगा, अस्तु।

निवेदकः—
श्रीगुरु चरण कमलाश्रित
जानकी रमण शरण पुजारी

प्रकाशकः—
महाराज किशोरी शरण जी
जयपुर मन्दिर,
अयोध्याजी

प्रथम संस्करण १०००
निछावर ॥) आठ आना मात्र
सम्वत् २०११ वि०

मुद्रक
आनन्द प्रेस
अयोध्याजी

महर्षि वाल्मीकि शोध संस्थान
15314
अयोध्या

❀ श्री सीतारामाभ्यां नमः ❀

श्रीहनुमतेनमः। श्रीरामानंदाचार्यायनमः। श्रीसतगुरुदेवायनमः।

* ज्ञान बारह खड़ी *

चौ०—कक्का काम बासना त्यागो।
जगत बासना सोवत जागो॥

भावार्थ—प्रथम श्री ककार व्यंजन द्वारा श्री रसिकअली जी महाराज आदेश करते हुए कहते हैं, कि पहले तुम अनिच्छित (सर्व कामनाओं से रहित) हो जावो। अर्थात् जगत की कोई भी विषय वासना (इच्छा) न रक्खो। क्योंकि जगत की कोई भी विषय बासना रखना ही, सोवना है। इससे सोते से जागो, क्योंकि जब सोते से जागोगे, तब न कुछ कर सकोगे। जगत विषय क्या है, इसको भी समझ लो, क्योंकि जब विषय के स्वरूप को नहीं समझोगे, तब बिना समझे (बिना ज्ञान के) त्याग कैसे करोगे। 'संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने" (जगत के विषय ये हैं) कि नाना प्रकार के जगत की वस्तुओं को देखना, सुनना, कहना, सूंघना, स्पर्श, ग्रहण करना। अब इन पांचों वस्तुओं में लौकिक, पारलौकिक दो प्रकार हैं। जो भगवत भागवत मई हैं, अर्थात् जिससे भक्त और भगवान का संसर्ग है, सो पारलौकिक, परलोक मई है, और जो वस्तु भगवत, भागवत संसर्ग से रहित है, सो लौकिक, लोकमई है। लौकिक वस्तु में आसक्ति होने से, नीची गती प्राप्त होती है।

और पारलौकिक वस्तु में आसक्ति होने से उच्च गती प्राप्त होती है। आंखों से भगवत भागवत दृश्य देखना, कानों से भक्त भगवंत मय शब्द सुनना, जिभ्या से भगवान, भक्त मय शब्द उच्चारण करने से, नासिका से भक्त भगवंत मई सुगंधादिक सूंघने से, त्वक (त्वचा) से भगवत, भागवत मयी स्पर्श, परसन करने से, श्री प्रभु की निकटता प्राप्त होती है और भगवत, भागवत संसर्ग रहित वस्तुओं में आसक्ति होने से महा दुख रूप नर्क की प्राप्ति होती है।

चौ०—जगत बासना अति दुखदाई।
गुरु हरिजन सेवत मिटि जाई॥

शैर—अली, गज, मीन, मृग, सलभी,
बिषय इक इक में मरते हैं।
नतीजा क्यों न पावें वो,
बिषय पांचों जो करते हैं॥

भावार्थ—जैसे कि भवरा सुगंध के वस होकर मारा मारा फिरता है और अंत में कमल में संपुट हो मृत्यु के वस हो जाता है। और स्पर्श के वस हो हाथी हस्थिनी को देख कर गड्ढे में पड़कर मृत्युरूप बन्धन में पड़ता है। मीन (मछली) भोजन के लालच वस मछली पकड़ने वाले के हाथ, कांटे में फँसकर पड़ जाती है और मृत्यु को प्राप्त होती है। मृगा बधिक की बीन सुनकर शब्द विवस हो पकड़ा जाता है, और मृत्यु को प्राप्त होता है। सलभी यानी पंखी रूप के वस होकर

दीपादिकों में जा जा कर जल जाती है अर्थात् वह भी मरण को प्राप्त होती है । ये पूर्वोक्त पांचों विषयी एक एक विषय में पूर्ण रूप से लगने से मारे जाते हैं, तो फिर ये पांचों विषयों में आसक्त हुआ जीव क्यों न मारा जायगा, (अवश्य मारा जायगा) इत्यादि । इससे—

चौ०—काम क्रोध लोभन ते भागो ।
सिय रघुबर के पद अनुरागो ॥

भावार्थ—हे जीवात्मे ! तुम काम से, क्रोध से, लोभ से, सदैव दूर रहो, अर्थात् इनका स्वरूप क्या है कि, "लोभ के इच्छा दम्भ बल, काम के केवल नार" ॥ "क्रोध के परुष बचन बल, मुनिवर कहहिं बिचार" ॥ इससे जब तुम काम, क्रोध, लाभ से दूर रहोगे, तभी न सिया रघुबर अर्थात् श्री सीताराम जी के चरण कमलों में प्रेम कर सकोगे ॥ अर्थात् प्रेम प्राप्त होगा ॥ "यह जग जामिनि जागहिं जोगी ॥ बिरति बिरंचि प्रपंच बियोगी ॥" "जानिय तबहिं जीव जग जागा ॥ जब सब विषय विलाश बिरागा ॥" "होय बिबेक मोह भ्रम भागा ॥ तब रघुनाथ चरण अनुरागा ॥" "काम आदि मद दम्भ न जाके । तात निरंतर बस मैं ताके ॥" दोहा—काम क्रोध मद लोभ सब, नाथ नरक के पंथ ॥ सब परिहर रघुबीरहि, भजहु भजहिं जेहि संत ॥ इत्यादि ॥ २ ॥

कक्का कवि कोविद कहत, दुर्लभ नर तन पाय ॥
करिये सत संगत सदा, सिय वर पद रति लाय ॥

ककार व्यंजन के प्रथम अक्षर की दोहा द्वारा पूर्ती करते हुये श्री रसिक अली जी महाराज कहते हैं कि जो बात मैं इस बारह खड़ी में कह रहा हूँ. उस बात को मैं अपनी ओर से बनाकर नहीं कहता हूँ, इस बात को श्री कविवर बाल्मीक जी व व्यासादिकों ने व श्री तुलसी, सूर, कबीर आदिकों ने समर्थन किया है ॥ और कोविद. जो समदर्शी पण्डित हैं वो भी इस बात को प्रतिपादित किया करते हैं ॥ और किये हैं। कि दुर्लभ नर तन पाकर के सतपुरुषों का संग हमेशा करना चाहिये। दुर्लभ शब्द का भाव ही (अकारण) कृपा का लक्ष रूप है। और नर कही मनुष्य देह सर्व पुरुषार्थ करने योग्य है ॥ अर्थात् देव दुर्लभ वस्तुओं को प्राप्त कर सकता है ॥ (श्री० गो० तु० दा० मा०) में कहते है कि—

"बड़े भाग मानुस तनु पावा। सुर दुर्लभ सद ग्रन्थन्हि गावा" ॥ "साधन धाम मोक्षकर द्वारा। पाय न जोंह पर लोक सवांरा ॥ दोहा— सो परत्र दुख पावै, शिर धुनि धुनि पछताय ॥ कालहिं कर्महि ईश्वरहि, मिथ्या दोष लगाय ॥ "एहि तनकर फल बिषय न भाई। स्वर्गौ स्वल्प अंत दुख दाई ॥" "नर तन पाय बिषय मन देही ॥ पलटि सुधा ते सठ विष लेही ॥" "ताहि कबहु भल कहै न कोई ॥ गुंजा गहै परसि मणि खोई ॥" इस प्रकार करामात की पिटारी रूप नर तन पाकर के जिसको "कबहुँक करि करुणा नर देही। देत ईश बिनु हेत सनेही ॥' जोकि, नर तन भव वारिधि कहँ बेरो। सम्मुख मरुत अनुग्रह मेरो ॥ जो श्री प्रभु कृपा रूपी वायू से प्रेरित हो संसार रूपी समुद्र में संदेह रहित चलकर यथार्थ अपने ठिकाने को प्राप्त हो सकता है ॥ कब, जब इस तन से सत्य वस्तु जो सर्वोपर (सबसे परे) भगवान के नाम,

रूप, लीला, धामादि हैं। तिनको व उन सर्व ऊपर प्रभू के भक्त सन्तों के नाम रूप गुणादिकों का संसर्ग यानी संग करोगे, सत वस्तु को ग्रहण करोगे॥ तब वह श्री सीताराम जी के चरण कमलों की प्रीति को प्राप्त होगे॥ अथवा श्री सीताराम जी के चरण कमलों में प्रीति लगाकर और सत वस्तु, सत पुरुषों की संगति में लग जाना चाहिये॥ क्योंकि यही संसार में, सार रूपा तत्व स्वरूपा है॥ "सत संगत दुर्लभ संसारा॥ निमिष दण्ड भर एकौ बारा॥ और फिर—

सत संगत सब सुख की मूला।
भगवत स्वरूप हरन भव सूला॥

इससे हमेशा सत संगत करते रहना चाहिये और सदैव श्री युगल सरकारों के चरण कमलों में प्रेम करते रहना चाहिये इसमें बिल्कुल नागा न हो, इत्यादि।

चौ० खखा खोजहु बेद पुराना।
श्रुति स्मृति संहिता प्रमाना॥

खकार व्यंजन द्वारा श्री रसिक अली जी महाराज इशारा करते हुते कह रहे हैं कि यदि पूर्वोक्त बातों में तुमको कहीं कुछ सन्देह हो तो, वेदों को पुराणों को श्रुति स्मृति संहितादि ग्रन्थों में खोज लो, (देख लो) कि सत संगत का कितना उच्च प्रभाव तथा महात्म्य है॥ और कितनी प्रशंसा की गई है। तथा सत संगत को कितनी मान प्रतिष्ठा दी गई है॥ पूर्वोक्त ग्रन्थों में कही हुई बातों का भारी प्रमान है।

पूर्वोक्त ग्रन्थों में खोजने से वस्तु को पावोगे, सीधी ऊपर ही नहीं रक्खी है। क्योंकि बिना परिश्रम के तो लोक की कोई वस्तु प्राप्त नहीं होती। तो फिर परलोक के लिये कहना ही क्या है। यानी जब परिश्रम से खोजोगे तब सब समझ जाओगे। फिर किसी बातों में संदेह नहीं रहेगा। इत्यादि।

चौ० परतम तत्व राम सिय लहिये ॥
तिनके गुणगण नितप्रति कहिये ॥

पूर्वोक्त सब वेद पुरान श्रुति, स्मृति, संहतादिकों में आया है। प्राप्त है कि परे से परे तत्व श्री सीताराम जी महाराज ही हैं। इनसे परे कोई कुछ भी तत्व नहीं है। सो इसी को लहिये यानी प्राप्त करना चाहिये। किसी अपर वस्तु के लिये नहीं भटकते फिरना चाहिये। यानी किसी दूसरे देवताओं की आशा नहीं करना चाहिये। अर्थात् श्री युगल सरकार ही सबसे परे तत्व श्री सीताराम जी हैं। इस सिद्धान्त को हमेशा हृदय में दृढ़ता पूर्वक धारण करे रहना चाहिये। इत्यादि।

फिर जिनको हृदय में धारण किया है (श्री सीताराम जी को) उन्हीं के गुण समूहों को हमेशा नित प्रति नेम पूर्वक गाते रहना चाहिये। और किसी भी समय न भूलना चाहिये। और जिन्होंने श्री सीताराम जी को प्राप्त किया है, और जिनको श्री सीताराम जी के गुण गणों में प्रीति है और प्रीति द्वारा जिन्होंने श्री सीताराम जी के गुण गणों को प्राप्त किया है अर्थात् श्री सरकारों के गुणगणों का जिनके हृदय में संचार है।

जिनके हृदय की परे से परे परम प्रभु के गुण गणों में प्रीति है। वही सब प्रकार से सर्व योग्यता को प्राप्त किये हैं। ऐसा समझना चाहिये।

खखा खाली खाल तन; पालत श्रम करि कोय॥
यही मूल अज्ञान को, प्रभु पद चित्त बिछोय॥

यह मनुष्य शरीर बिना सतसंग व श्री युगुल प्रभु के गुण गणों में बिना लगे किस काम का है (किसी काम का नहीं है) केवल खाली चमड़े की तरह किसी भी जीव के किसी भी काम का नहीं है यदि भगवान के गुण गण रहित इस खाली खाल रूप, भगवद् गुण गण सत्संग रहित तन को जो नाना प्रकार के परिश्रम कर करके पालन पोषण आराम देता है तथा भ्रम मय सुख भोग भोगता है। जो कि तीनों काल में सत्य नहीं है। सो उसको क्या कहा जाय। यही तो अज्ञान का मूल है। जिससे चित्त को श्री प्रभु पद का वियोग हो रहा है।

"सेवहिं लखन सीय रघुबीरहिं।
जिमि अविवेकी पुरुष शरीरहिं॥"

जिस प्रकार भक्त तनमय होकर भगवान की सेवा करता है, उसी प्रकार अविवेकी पुरुष शरीर अभिमानी होकर शरीर की सेवा करता है। चित्त को अज्ञान करके ही प्रभु पद से बिछोह होता है। ज्ञान भक्ति ही करके श्री प्रभु पद का प्राप्त होना सम्भव है। यहां पर ये दिखाया कि जे जन भगवत अनुराग सहाई शरीर को जान करके, शरीर से भगवत भागवत के गुण गणों में लगते हैं वो तो परम ज्ञानस्वरूप है।

उनका श्री प्रभु पद से कभी बिछोह नहीं हो सकता। जो खाली तन को पोषण करते हैं—"निज तन पोषक निर्दय भारी" तिन को श्री भगवत भागवत के गुणगण व सेवा नहीं प्राप्त होती है इत्यादि।

दोहा—प्रभु में लगनो ज्ञानवर, तजनो अति अज्ञान।
भक्ति बिना तन पोसनो, केवल नरक निदान॥

चौ०—गग्गा गुणों आपने मन में।
कहा सार यह मानुष तन में॥

श्री ग्रन्थकर्ताजी आतमा द्वारा गकार रूप व्यंजन से कहते हैं कि भला आपही अपने हृदय में (मन में) स्थिर हो साव-धानता पूर्वक बिचारिये कि इस मनुष्य शरीर में सार वस्तु क्या है; अर्थात यह मानव देह का सार रूप कर्तव्य क्या है। इसका विशेष प्रधान रूप सर्वोपरि क्या कर्तव्य है और यथार्थ में इसको क्या करना चाहिये। समस्त जोनियों से मानुष जोनी में एक विचार ही तो आत्म पथ को दिखाने वाला है। वैसे तो समस्त विषय पशु पंछी कीट कादि के समान ही है। सब को दुख सुख का अनुभव समान ही है। अपने आप से बड़ों के संग द्वारा एक मनुष्य ही यथार्थ अपना, पराया हित परम हित सोच सकता है। अपर जोनियों को ये दुर्लभ सोचने की शक्ति कहां है। इसले हे मानुष आत्माओ जरा आप ही बिचारो कि मानुष जन्म पाने की यथार्थ सार्थकता की सफलता किस बात में है। इससे—

सार बात गुन धारन करिये।
सहज भयंकर भवनिधि तरिये ॥

धन परिवार अचल नहिं कोई।
छिनहि जाय छिनही में होई ॥

इस संसार के बीच में धनादिक, रुपया, पैसा, सोना, चांदी, हाथी, घोड़ा, बग्घी, मोटर, जागीर, राज, जमीन, जगह, कुटुम्ब, परिवार, माता, पिता, भाई, बन्धु, नाते गोते वाले इत्यादि कोई भी स्थिर रूप से नहीं हैं सब चलायमान हैं। छिन में नष्ट हो जाते हैं और छिन में नवीन बन कर तैयार हो जाते हैं श्री प्रभु का खुद कहना है कि "सुत वित नारि भवन परिवारा। होहि जाय जग बारहिं बारा। शरीर का सम्बन्ध बस जीवित तक ही का है, शरीर छूटने से सब छूट जाते हैं, और शरीर धारण करने से फिर बनते हैं फिर प्रत्यक्ष में भी नवीन बनते छूटते रहते हैं। इसकी तो कोई बात विचारने योग्य नहीं है। तो फिर विचार क्या करना चाहिये।

ताते राम सिया वर नेहा।
करो छाडि उर सब संदेहा ॥

कि श्री सीताराम जी सर्वोपरि सदैव एकरस रहने वाले हैं। इससे उन्हीं श्री रामजी को जो कि श्री सीताजी के वर (दूल्हा जी) हैं। उन्हीं से श्रेष्ठ स्नेह करो। सबके स्नेह को उन्हीं के स्नेह में लय करके एक उन्हीं से प्रीति करो। हृदय में किसी भी प्रकार का सन्देह न रक्खो। सम्पूर्ण सन्देह यानी अविश्वास को छोड़कर दृढ़ विश्वास पूर्वक श्री सीताराम

जी में ही प्रीति रक्खो, और यथार्थ में यदि श्रेष्ठ स्नेह सराहनीय है सो श्री सीतारामजी प्रभु से ही है और सब स्नेह सराहनीय नहीं है। यानी छिन भंग है। इससे:—

परम सार याही जिय जानो।
सन्त शास्त्र गुरु बचनहिं मानो ॥

परम तत्व स्वरूप परम सर्वोपरि सार रूप श्री प्रभु सीताराम जी में जो स्नेह है उसी को हृदय से जानो, समझो, इसी बात को सन्त, महात्मा, सहस्रों स्त्री, पुरुष, सद्गुरु बारम्बार कहते हैं उसी को मानो इसी में दृढ़ निश्चय करो। कहने का तात्पर्य यह है कि श्री सीताराम जी से प्रीति रहित, सब असार रूप ही समझो और फिर वही सब सुजनों का सिद्धान्त है।— "सब कर मत खगनायक येहा।
करिय राम पद पंकज नेहा ॥" इत्यादि।

गग्गा गुण गहिये सदा, करि सतसंग उदार।
गुन हीते गुन को तरे, यथा कूप गुन सार ॥

श्री रसिक अली जी महाराज गकार व्यंजन द्वारा श्री सीताराम जी के गुण गणों को सदैव ग्रहण करने के लिये आज्ञा दे रहे हैं कि हमेशा श्री युगल सरकारों के गुण गण ग्रहण करते हुये और हमेशा सत संग सत पुरुषों का संग करते रहना चाहिये, सतसंग कैसा है कि उदार है तुम्हारा हृदय अलभ्य वस्तु पर सदा तत्पर रहना चाहिये। और फिर सतसंग ही अलभ्य वस्तु प्राप्त करा देने वाला है। सतसंग मई उदार वृत्ति धारण करिये, तन, मन, धन, (सर्वस्व श्री प्रभु

गुणानुवादों पर, और सतसंग पर, सतसंगी जनों पर, वारे रहिये) ये तात्पर्य है क्योंकि गुण ही ते गुण को प्राप्त होता है ॥ जैसे कि गुण रूपा रसरी के बिना जीवन गुणरूपा सार जल को, हृदय रूपी पात्र, नहीं प्राप्त कर सकता। जब गुण रूप रसरी में हृदय रूपी पात्र का गला फँसाता है तब कहीं नीचे गिरकर गुणाश्रय हो, परम सार रूप जल को, अर्थात् प्रभु भक्ति रस को प्राप्त करता है। इत्यादि।

प्रभु गुण गण बिन जन सतसंगा।
होय न भव भय दारिद भंगा॥

चौ०— घघ्घा मन को घोटो भाई।
बुद्धि विवेकन कुण्डी बनाई॥

घघ्घा व्यंजन के शब्द द्वारा श्री रसिक अली जी महाराज संकेत करते हुये कहते हैं कि यदि आप लोगों को भंग घोटने, पीने व खाने का शौक है तो हम जो आध्यात्मिक भंग घोटना, छानना पीना बताते हैं, सो उसे आप सब घोटो छाँनो, जिसके घोटने छाँनने से (परम आनन्द मई जो श्रीप्रभु हैं उनकी प्राप्ति होती है) सो प्रथम मन रूपी भंग घोटने के लिये, विवेकनी रूपी बुद्धि की कुन्डी बनाओ।—

घोटा ज्ञान नीम को कीजे।
जाते अंतर रुज सब छीजे॥

फिर ज्ञान रूपी नीम का घोटा यानी डंडा बनाइये, जिससे

अन्तःकरण (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार) के सब रोग नष्टता को प्राप्त हो जायें। फिरः—

निर्मलता साफी करि भाई।
भक्ति सुरस जल छान सुहाई॥

पुनः निर्मलता रूपी उज्वल पवित्र विकार रहित साफी यानी सुन्दर छुन्ना लाकर फिर सुन्दर भक्ति रस रूपी जल में मन रूपी भंग को सुन्दर अच्छी तरह छानकर औरः—

कामादिक सब लुगदी बहाई।
आतम पियो सोइ रस लाई॥

कामादिक यानी काम, क्रोध लोभ, मोह, मद, मात्सर्य रूपी लुगदी यानी छोई को फेंक कर, जीव आत्मा से भक्त रस के साथ, (सोई रस) जो भक्ति रूपी जल पूर्व कह आये हैं जब उस को पान करोगे। तब क्या होगा किः—

राम अमल तब भयो मतवारो।
डार दियो शिर ते जग भारो॥

श्री सीताराम जी के तत्व में लीन होकर, फिर मस्त यानी मतवाले हो जाओगे और अपने सिर से जग के भार (संसार के जितने जालादि प्रपंचों के भारों को फेंक दोगे यानी जगत से कुछ भी परवाह न रक्खोगे। केवल श्री प्रभु पद में लगकर श्री प्रभुमय हो जाओगे।) तब फिर कहना ही क्या है।

जय जय जय रघुबीर उचारो।
ऐसो अमली भयो सुखारो॥

फिर श्री प्रभु में लगकर मन से, बचन से, कर्म से जय जय श्री रघुबीर जी की करोगे (उच्चारण करोगे) निश्चय आत्मक बुद्धि प्राप्त कर श्री सीताराम जी की जय होय, जय होय, इस प्रकार से जीवन मुक्त हो जब राम रस का अमल चढ़ा और श्री राम अमल पीकर पीने वाला जीव आत्मा सत सुख को प्राप्त भया। तव पूर्ण सुखी हुआ। इत्यादि।

घघ्घा जग घर छोड़िके, बन में करो निवास।
सिय रघुबर छबि उर धरो, छाड़ि जगत की आस॥

संसार रूपी भ्रममय घर को छोड़कर, निरालम्ब श्री प्रभु प्रिय आश्रय हो, सबसे निराले होकर (बन में निराश्रय निवास करो)। जगत की आशा छोड़ श्री प्रभु की कृपा की आशा रखते हुये, सबसे बिलग रहकर श्री सीताराम जी की सुन्दर छवि को अपने हृदय में धारण करो॥ (ध्यान कर मानसी भावना में तत्पर हो जाओ) भाव यह है कि जब तक जगत की आशा नहीं छोड़ोगे तब तक श्री सीताराम जी की छवि हृदय में कैसे धारण कर सकोगे॥ फिर हृदय में एक ही वस्तु रह सकती है चाहे जगत की आशा रखे रहो। चाहे श्री प्रभु छवि का भरोसा रक्खो। जैसे "तुलसी दो दो न बनै रवि रजनी इक ठाम॥" घर में रहकर श्री युगल प्रभु की आसा भरोसा रखते हुये, उन्हीं के परम आनन्द मय ध्यान को मन में रखना ये ही वन का रहना है, और वन में रहते हुये जगत की आशा रखना, ये जग घर में रहना है। इसको भी समझो इसके अन्तरगत ये भाव है कि —

घर में रह प्रभु की सुध राखो ।
ग्रह बैठे पर आनद चाखो ॥

चौ०—नन्ना नातो जग से छोड़ो ।
सियाराम परिकर में जोड़ो ॥

नकार व्यंजन द्वारा श्री ग्रन्थ कर्ता जी महराज कह रहे हैं कि प्रथम जगत से नाता न रक्खो । अर्थात् सांसारिक व्यवहारिक जो झूठे नाते गोते हैं, उनको छोड़ो, और श्री सियाराम जी से दृढ़ भावना अनुकूल नाता सच्चा रक्खो और जो श्री सीताराम जी के परिकर सेवक भक्त जन हैं ॥ उनसे अपनपौ मान नाता लगाओ । जब तक तुम संसारी नाते छोड़ श्री सीताराम जी व उनके परिकरों से सम्बन्ध अपनपौ नहीं रक्खोगे । तब तक तुमको यथार्थ सुख नहीं प्राप्त होगा । ये भाव है ।

तहाँ स्वरूप आपनो लहिये ।
यथा स्वरूप नाम पुनि कहिये ॥

क्योंकि सियाराम परिकरों के पास ही से तुमको अपने शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति होगी और जब तुम यथार्थ स्वरूप की प्राप्ति आचार्य द्वारा करोगे, तब फिर तुम अपना यथार्थ स्वरूप जान सकोगे और उसकी व्याख्या भी करते बनेगी और यथार्थ नाम को प्राप्त होगे पुनः यथार्थ स्वरूप के नाम की हम आगे पहिचान कहेंगे इत्यादि ।

जब लगि निज स्वरूप नहिं जाने ।
तब लगि मिथ्या सुख सुख माने ॥

नन्ना नवधा भक्ति कर, तब यह सुख को पाय।
राम भक्ति सो प्रीति कर, करिये लच्छ सुभाय॥

श्री रसिक अली जी महाराज नकार व्यंजन द्वारा, नवधा भक्ति का आदेश करते हुये कहते हैं कि ये जीव आत्मा, जब नवधा भक्ति को ग्रहण करेगी, अर्थात् नौ प्रकार से श्री सीताराम जी में लगेगी। तब क्रियाओं में तत्पर हो, सुख को प्राप्त होगी। अर्थात् जब नवधा भक्ति, श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, बंदन, अर्चन, दास्य, सख्य. (आत्मा निवेदन) आदि में पूर्ण रूपसे लगेगी, तब श्री युगल प्रभु के दर्शन होंगे, तब उसका फल क्या होगा कि "मम दर्शन फल परम अनूपा। जीव पाय निज सहज स्वरूपा॥" भक्ति करने से भगवान के दर्शन होंगे, दर्शन से निज सहज स्वरूप प्राप्त होगा, तव जीव आत्मा को यथार्थ सुख की प्राप्ति होगी इत्यादि।

अब नवधा भक्ति कैसे होगी। सो इसके लिये श्री राम भक्तों की (जो नवधा भक्ति करने वाले जन हैं) उनकी संगति करनी होगी और उन्हीं के समान लक्षण, स्वरूप और स्वभाव आदिक धारण करना पड़ेगा। इससे क्या होगा कि—
कछु दिन कर देखे उपाव। पुन पर जात मनसा स्वभाव॥
भक्तों के संग से स्वभाविक भक्ति प्राप्त हो जायेगी। जो सहज सुख रूपा है। फिर ये दिखाया कि:—

भक्त संग बिन भक्ति न होई।
भक्ति बिना सत सुख नहिं कोई॥

पुन: इससे नवधा भक्ति में प्रेम करिये, और जिस भक्ति को जिस प्रकार लच्छयुत धारण करना चाहिये। सो लच्छ स्वाभाविक धारण करिये, जो कि दिखावटी व पाखन्ड मय न हो, सदा एक रस रहने वाला हो, तब यह जीव आत्मा इस यथार्थ सुख रूप भगवत की प्राप्ति को प्राप्त होगा। इत्यादि भाव हैं कि—

चच्चा चार धाम फिर आयो।
पर सरूप निज रूप न पायो॥
वृथा महाँ श्रम कीनो भाई।
बिन सतसंग न सो उर आई॥

श्री ग्रन्थकर्ता जी महाराज चकार व्यंजन द्वारा आदेश करके कह रहे हैं कि आप चाहे चारों धाम (श्रीजगदीश, श्रीरामेश्वर, श्रीद्वारिका, श्री बद्रीनाथ जी) इन चारों धाम में घूम फिर आइये, लेकिन पर स्वरूप व निज स्वरूप कहीं भी नहीं पावोगे अर्थात् आपको पर स्वरूप व निज स्वरूप की प्राप्ति कहीं भी नहीं होगी। सो चारों धाम घूमने व जाने का सारा परिश्रम वृथा ही समझना चाहिये। क्योंकि जब श्री प्रभु जनों की संगति प्राप्त हो, तब न वह आनन्द प्राप्त होता है। अर्थात् सतपुरुषों उपासकों की संगति बिना परस्वरूप व निज स्वरूप की प्राप्ति होना, अत्यंत दुर्लभ है। बिना सतसंग के हृदय में पर स्वरूप व निज स्वरूप का बोध नहीं होगा और न हृदय में कोई सिद्धान्त ही बैठेगा, न हृदय को कहीं भी शान्ति मिलेगी। इत्यादि,

तातै मिथिला अवध बस, राम रसिक जन संग।
करो कपट छल छोड़िके, तब पाओ निज रंग ॥

चच्चा चारों वेद पढ़ि, भयो नहीं हिय ज्ञान।
सो न होय सतसंग बिन, यह निश्चय जिय जान।

श्री ग्रन्थकर्ता जी महाराज कहते हैं कि श्री मिथिला धाम में व श्री अवध धाम में, बास कर जो श्री राम प्यारे श्री सीताराम जी के रसिक भक्त जन हैं, उनका संग करो, परन्तु सब, कपट, छल, छोड़, के संग करो। तब रंग को यानी यथार्थ तत्व को प्राप्त होगे और अपनी इच्छा अनुकूल सुख को प्राप्त होगे। यानी जो तुम्हारा खास रंग है उसको प्राप्त कराेगे। इत्यादि।

चकार व्यंजन के द्वारा श्री ग्रन्थकर्ता जी महाराज आप सबको जनाते हैं कि आप चाहे चारों वेदों के ज्ञाता हो जाओ। परन्तु निज प्रभु के स्वरूप की प्राप्ति परम भक्ति रूपा नहीं प्राप्त होगी। अर्थात् निज पर स्वरूप के तत्व को यथार्थ रूपसे नहीं जान सकोगे।

स्व स्वरूप, पर स्वरूप अर्थात् जीवात्मा के स्वरूप की और परमात्मा के स्वरूप की संत सत पुरुषों के सतसंग द्वारा ही, प्राप्ति होती है। दूसरे प्रकार नहीं होती। ये तुम निश्चय करके जानो इसमें कोई सन्देह नहीं है।

चार धाम में सो नहि पइये।
जो सतसंग मध्य सुख लइये ॥

छछ्छा छोड़ो हठ अज्ञाना।
चारों वेदन यही प्रमाना॥

श्री रसिक अली जी महाराज छकार व्यंजन द्वारा आदेश करते हुये कहते हैं कि अज्ञान स्वरूप जो हठ है उसको छोड़ दो (हठ और अज्ञान इन दोनों को छोड़ दो) इनके त्यागने का प्रमाण चारों वेदों में है कि अज्ञानरूपी हठ ही जन्म बन्धन का कारण जीव के लिये है। इस ने इसके विना छोड़े तुम्हारा यथार्थ वस्तु में अनुराग (प्रेम) नहीं होगा। यानी यथार्थ पथ में प्रवृत्ति नहीं होगी इत्यादि।

राम सिया ते पर कोइ ईशा।
कहै तो जानो झूठे खीसा॥

यदि कोई श्री सीताराम जी से परे और कोई ईश्वर को बतलाये तो उसे समझना चहिये कि यह झूठे खीश यानी व्यर्थ दाँत निकाल करके बकवाद करता है। झूठे खीसा, उसे कहते हैं जो कि व्यर्थ में जिस बात का कुछ भी प्रयोजन नहीं। और उस बात को जो कोई निरुपण करे। तो उसे झूठे खीस ही निकालना समझना चहिये। और जो कोई सच्चे सिद्धान्त को झूठी खीस यानी दाँत निकाल कर यथार्थ बात को मिथ्या करके बतलाना चाहते हैं। उसीको झूठे खीसा निकालने वाला समझना चाहिये। फिर श्री सीताराम जी दो भुज प्रभू सबसे परे हैं। सो देखिये;

द्विभुज प्रभू सब से पर कहिये।
सब में तत्व उन्हीं को लहिये॥

छछ्छा छाड़ो बात इक, पर नारायण कोय।
मसक उदर में कौन बिधि, गज समाय सुठि सोय॥

श्री रसिक अली जी महाराज कहते हैं कि एक इस बात को तुम बिलकुल छोड़ दो अर्थात् नहीं ग्रहण करो। कि कोई पर नारायण है। वही सबसे परे है अब नारायण शब्द का अर्थ ये है। कि नार ऐन नारायण हुआ, नार नाम है जल का और नार नाम है सब जीवों का सो जो जल में अपना स्थान बनावे। जल में रहें, सो कही नारायण, (क्षीर सायी भगवान सो कहावे नारायण) और जो सब जीवों के हृदय में रहे सो कहावे नारायण, भला कहिये तो मसक के उदर में किस प्रकार से सुन्दर हो कर हाथी समा सकता है। पर नारायण महाविष्णु को कहते हैं। सो महाविष्णु श्री राम जी के दिव्य गुणों के विग्रह स्वरूप हैं। उन्हीं से सब दशों व चौबीसों अवतारों का आविर भाव होता है। और श्री राम जी तो अवतारी हैं। यथार्थ सिद्धांत में पक्षपात करना ठीक नहीं। वैसे अपने अपने उपास देवको तो सभी उपासकों को अपनी २ भावना की दृढ़ता के लिये, पर मानना पड़ेगा ही। ये बात तो दूसरी है। सिद्धान्त की बात सर्व माननीय होती है। इत्यादि।

जो जेहि देव उपासक होई।
सो तेहिको पर मानै सोई।
ये तो निज २ पक्ष सुहाता॥
इसमें नहिं सिद्धान्त की बाता।

चौपाई — जज्जा जोगी मुनि सन्यासी।
तपसी सिद्ध उदार उदासी ॥
राम भजे सबका निरबाहा।
राम चरण रति सबही चाहा ॥

श्री ग्रन्थकार जी जकार व्यंजन द्वारा आदेश करते हैं कि जोगी; अष्टाँग जोग करने वालों में श्रेष्ठ, और अत्यन्त मनन शील मुनि जनों में श्रेष्ठ मुनि, और संसार का न्यास यानी त्याग करने वालों में श्रेष्ठ संन्यासी, और तपा चरण शील तप में सदैव तत्पर रहने वालों में श्रेष्ठ तपस्वी और सब प्रकार सिद्धियों को प्राप्त करने वाले, सिद्ध जनों में श्रेष्ठ सिद्ध, और सर्व अंगों से उदारता में तत्पर, उदार जनों में श्रेष्ठ उदार, सर्व लौकिक सुख प्राप्त करने वालों से उदास रहने वाले दिव्य कृपा की आशा रखने वाले उदासी, जनों को लेकर इत्यादि पूर्वोक्त सब सिद्ध साधक जनों का, श्री राम जी के भजन से ही निर्वाह होता है और पूर्वोक्त सब सत माँग ग्रहण करने वाले सब श्री रघुनाथ जी के चरण कमलों में प्रीति चाहते हैं। और सब करतूतों की मूल सार रस रूपा श्री राम भजन ही को समझते हैं। और प्रेम से भजन करते कराते हैं यह भाव है ॥

चौपाई— योगी सूर सुतापस ज्ञानी। धर्म निरत पंडित विज्ञानी ॥' 'वैखानस बटु यती उदासी। कवि कोविद विरक्त संन्यासी ॥' 'सब कर मत खगनायक येहा। करिय राम पद पंकज नेहा ॥' (गो० तु० दा०)

जज्जा ज्यों सब तीर्थ में, जल ही सार विचार ।
वैसे ही सब शास्त्र में, राम नाम निरधार ॥

इसी प्रकार जिस तरह तीर्थों में जल ही एक सार रूपा, सब तीर्थ स्थानों की सार रूप शोभा प्रतिष्ठा देने वाला दिखाता है। उसी प्रकार सब शास्त्रों के बीच में, एक श्री राम नाम ही तत्व स्वरूप सार रूप है। अर्थात् शास्त्रों के प्राण रूपा श्री राम नाम है। श्री गोस्वामी जी ने कहा भी है। कि—

बन्दो राम नाम रघुबर को। हेतु कृशानु भानु हिमकर को ॥
बिधि हरिहर मयबेद प्रानसो। अगुण अनूपम गुण निधानसो ॥

श्री राम नाम सत्य है और सत्य कहे मुक्त है पूर्वोक्त प्रकार ही सबने निराधार किया है। अर्थात् निश्चय किया है, समझा है। श्री राम नाम ही सबके सिद्धान्तों को पुष्ट करने वाला है। श्री रामनाम बिना कोई सिद्धान्त सार रूपा नहीं है, यानी सब अपुष्ट असार है।

राम नाम सब नामन हेतू ।
प्रभुहि मिलावन मोद निकेतू ॥

झझ्झा झूठी रचना छोड़ो ।
बेद पुरान स्मृति सब जोड़ो ॥
नीके उपनीषद पुनि देखो ।
सिया राम परताप जुलेखो ॥

श्री ग्रन्थकार जी झकार व्यंजन द्वारा आदेश करते हुये कहते हैं कि जो माया मयी झूठी रचना है, अर्थात् मिथ्या भ्रम मय दृश्य है, इसको छोड़ो अर्थात् त्यागो। इसीके त्यागने को

वेद पुराण स्मृतियों आदि ने कहा है। अर्थात् वेद पुराण स्मृतियां सब एकत्र करके अवलोकन करो समझो और अच्छी प्रकार रामतापनी आदि उपनिषदों को भी देखो और सबमें श्री सीताराम जी का प्रताप क्या है, स्वरूप क्या है, कैसा लिखा है। उसको देखो सुनो, समझो, तब न बूझ पड़ेगा। परन्तु बिना भ्रम मय झूठी रचना छोड़े, श्री सीताराम जी का स्वरूप प्रताप नहीं देख पड़ेगा। इत्यादि, 'जग नभ बाटिका रही है फल फूल रे। धुवां कैसो धौर हर देख तू न भूल रे।'

गो० तु० दा०

झझझा झांझ बजाय के, सिय रघुबर गुण ग्राम।
गावो हिय अति प्रेम भर, तब पाओ बिश्राम॥

इससे ग्रन्थकार श्री रसिक अली जी महाराज कहते हैं कि झांझ बजा बजा कर, श्री रघुनाथ जी के सहित श्री किशोरी जी के गुण समूहों को हिय से अत्यन्त प्रेम में भर कर गाओगे; तभी तत्काल ही विश्राम को पाओगे क्योंकि; "कलौ केवल कीर्तनात।"

कलि में हरि कीर्तन अति प्यारो।
प्रभुहि मिलावन जन रखवारो॥

चौपाई — नन्ना प्रथम निषेदहि त्यागो।
वेद बिहित बिधिते अनुरागो॥
विधि निषेद पुनि दोऊ त्यागो।
पद चतुर्थ भक्तिहि अनुरागो॥

ग्रंथकारजी का कहना है कि पहिले त्यागने योग्य जो निषेध रूप रास्ते यानी बिषय भोग आदिक हैं, तिनको त्यागो पुनः जिस प्रकार वेदादिक सद ग्रंथो में भगवत प्रेम अनुराग के मार्ग में प्रवेश होने के पथ वर्णन किये हैं। उसी प्रकार वेद विहित बिधि से श्री प्रभु में अनुराग करो, पुनः ग्रहन, त्याग, विधि, निषेद दोनों को त्यागो। पुनः चतुर्थ पद रूपा भक्ति करो। श्री प्रभु में अनुरान (प्रेम) करो ये प्रथम पद हुआ, निषेद वस्तु पथों को त्यागो, ये द्वतीय पद हुआ वेदबिहित बिधि से भगवत में प्रेम करना। पुनः तृतीय पद हुआ बिधि निषेद दोनों का त्याग—'त्यागहि कर्म सुभासुभ दायक।' और ये चतुर्थ पद हुआ, 'भजहि मोहिं सचराचर नायक।'

'सो अनन्य अस जाहि के, मति न टरे हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप राशि भगवंत॥

आठो पहर परम प्रेम भक्ति में ही तत्पर तनमय रहना। इत्यादि

नन्ना नर तन जाय सठ, या मानुष तन पाय।
मानुष तन को गुण कहा, जो पुनि नरक सहाय॥

श्री रसिक अली जी महाराज कहते हैं कि ऐसी सुन्दर नर देही पाकर यदि मूर्ख मनुष्य ने नरक जाने का रास्ता कमाया. तो फिर मानुष देही प्राप्त होने का गुण क्या हुआ, अर्थात क्या फल भया, जो नर तन देकर भगवान ने बिना कारण कृपा करके छुटकारा किया, कबहुँ कि कर करुणा नर देही। देत ईश बिन हेत सनेही, पुनः अपनी नीची करतूत द्वारा फिर नरकन को गया, नरक ही नरक में ले जाने वाला सहायक भया।

इसमें क्या प्राप्त हुआ श्री प्रभु की अहेतुकी करुणा कृपा को व्यर्थ ही न किया।

सुर दुर्लभ नर देही पाई।
प्रभु करुणा को गयो भुलाई॥
जो चाहत सो कृत कर पातो।
श्री प्रभु भज श्री प्रभु ढिग जातो॥

चौपाई—टट्टा टेक एक मन राखो।
सीताराम नाम मुख राखो॥
काहू सो नहि हाथ पसारो।
जाँचक लखो शकल संसारो॥

टट्टा टरो न टेकते, एक बात उर राखि।
साहिब सीताराम हैं, तहाँ दीनता भाखि॥

ग्रन्थकार जी टकार व्यंजन द्वारा संकेत करते हुये कहते हैं कि, मनको चल बिचल न होने दो। एक टेक पर दृढ़ रक्खो, यानी जो आचार्य द्वारा प्राप्त हुआ हो, उसी में निश्चय रुपेण डटे रहो। अपने उपासना भाव की टेक को न छोड़ो। श्री सीताराम नाम को सदैव मुख में रक्खो। यानी श्री सीताराम नाम का स्मरण छिन मात्र भी न छोड़ो। सदैव श्री युगल नाम के रटन में लगे रहो। इतना करते हुये किसी से किसी बात की जाँचना न करो। यानी हाथ पसार के किसी से कुछ न मांगो,

कुछ लेने के लिये किसी के सामने हाथ न पसारो। क्योंकि किसके सामने हाथ पसारा जाय सारा संसार तो यांचक है। यांचना के बस हो किसी संसारी प्राणी से क्या यांचना करें, क्योंकि संसार के कोई भी ऐसे जीव नहीं है जो अपनी विथाओं के कारण दुखी न हों। अर्थात सब को कुछ न कुछ दुख अवश्य है। इस लिये संसार के प्राणी जनों के सामने जाँचने का काम ही निंद्य है। अपने तो श्री सीताराम जी महाराज महान उदार हैं दाता हैं; बिना सेवा ही सब देने वाले हैं। सामर्थवान हैं। तब फिर उन्हीं से जो चाहो सो क्यों न जाँचो। ये अपना स्वरूप है।

अपनी यथार्थ एक टेक पर निर्भर रहो, एक बात ही पर निश्चय विश्वास दृढ़ाये हुये रक्खो। श्री सीताराम जी महाराज साहिब सर्वोपरि मालिक हैं, उन्हीं के आगे दीनता पूर्वक जो कहना हो कहो जो मागना हो माँगो, अपने यथार्थ मनोरथ की पूर्ति करो। मागने से मागना, दुखी का दुखी से मिलना है, लेकिन कुछ यथार्थ मतलब हल नहीं होता। इत्यादि।

प्रभु के हो न और के होवो।
बनी बनाई बात न खोवो॥

चौपाई—ठठ्ठा ठाटो ठाट यही मन।
सत गुरु को अरपो तन धन मन॥
प्रथम ज्ञान जिज्ञासा कीजे।
गहि वैराग भक्ति चित दीजे॥

ठट्ठा जानो ठीक तब, निज पर रूप लखाय।
छूटें सब जग बासना, प्रभु मय सब दरसाय॥

श्री रसिक अली जी महाराज कहते हैं। कि यदि आप ठाठ ही ठाटना चाहते हो, तो मन के बीच में मजबूती के साथ यही ठाट ठाटो, कि सत गुरु जो श्री सीताराम जी के श्री युगल मंत्र बीज को प्रदान करने वाले हैं उनको तुम, तन, धन, मन, समर्पण करदो। यानी शरीर की सार सम्हार उन्हीं के हाथ रक्खो। धन जो अपने पास हो, सब उनको ही दे दो। अपना पना धन में कुछ न रक्खो, और मन भी उन्हीं के हाथ का कर दो अर्थात उनके जाने बिना कोई बात मन में न रक्खो। अर्थात छल, कपट, छिपाव कोई प्रकार मनमें न रक्खो। फिर पहिले अपने श्री प्रभु सम्बन्धी बातों के जानने की जिज्ञासा रक्खो। अर्थात इच्छा करो। संसार की व्यवस्था जानना ज्ञान नहीं है। ये तो अज्ञान है। श्री प्रभु मयी ज्ञानका जानना ही, सच्चा ज्ञान कहलाता है। तिसके बाद जगत पंच बिषयादिकों (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध) का त्याग कर: अर्थात वैराग करो। राग रहित वृती (स्वभाव) धारण करो। पुनः श्री नवधादि भक्ति में चित्त को लगाओ। (श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद सेवन, अर्चन, दास्य, सख्य, आत्म निवेदनादि) भगवत भागवत मयी भक्तियों को धारण करो। इत्यादि।

जब पूर्वोक्त ठाठ ठट जाय तब जानो कि ठीक भया, फिर निज स्वरूप और पर स्वरूप को लखो। अर्थात भक्तियों में लगने से, अपने आपने, श्री प्रभु कृपा से, निज परलोक को प्राप्त होवो, यानी देखो। तिसके बाद फिर जगत की वासना

से रहित हो कर श्री प्रभु में ही सारे जगत को देखो। फिर क्या कहना है, "जहँ तहँ देख धरे धनुबाना" भावना वाले सिद्ध स्वरूप बन जाओ अर्थात सब अपने ठाट बाट तभी ठीक जानों, जब अपने स्वरूप का बोध हो। देखने में आ जाय। और पर स्वरूप का बोध हो, यानी पर स्वरूप भी देखने में आ जाय। और सब जगत की वासना छूट जाय श्री प्रभुमय दृश्य सब देखने में आने लगै। इत्यादि।

प्रभु बिन ठाट व्यर्थ सब जानो
प्रभु सह सब प्रभु सेवा मानो॥
हरि पद रति सत योग बनावन।
मोह ठाँम वासना मिटावन॥

चौ०—डड्डा डगमग मनकर थीरा।
हिय ल्यावो छबि सिय रघुबीरा॥
राम रसिक जन सों कर प्रीती।
दया सकल जीवन पर नीती॥

डड्डा डांमा डोल मन, भजन न होय विचार।
ताते मन को थिर करो, हरि गुरु संतन धार॥

श्री ग्रंथकार जी महाराज कहते हैं कि जो तेरा मन डगमग डगमग अर्थात चंचल हो रहा है। सो इसको पहिले स्थिर कर, फिर श्री सीताराम जी की छबि को हिय में लाओ।

अर्थात ध्यान करो। यदि कहो कि इस मन को स्थिर कैसे करें और सीताराम जी की छवि का ध्यान किस प्रकार हृदय में लावें। तिस पर आप कहते हैं कि श्री सीताराम जी के रस के वेत्ता, रसिक जनों से प्रीति करो। उनकी कृपा से तुम्हारा मन भी स्थिर हो जायेगा। और श्री युगल छवि का भी हृदय में ध्यान होने लगेगा। ये भाव है। एक बात ध्यान रक्खो. कि सम्पूर्ण जीवों पर दया रखते हुये, नीत पथ में प्रवृत्ति रक्खो। निर्दयपन और अनीति में रति न रक्खो। नहीं तो सत पुरुषों का संग करते हुये भी, कुछ नहीं प्राप्त होगा। यानी पूर्वोक्त सिद्धान्त नहीं ठीक होगा। ये बात है कि जब तक मन चंचल रहता है तब तक न भगवान का भजन भक्ति बनती है। और न सद बिचार ही उत्पन्न होता है। तिससे भगवान की शरणागति प्राप्त कर गुरु सन्तों का आधार पकड़ो। तो सब बन जायगा। श्री हरि गुरु सेवा, व संतो की सेवा यही इस जीवन का आधार है। इसीसे सब प्राप्त हो जायेगा ये तात्पर्य है। इत्यादि।

हरि गुरु सन्त कृपा बिन भाई।
मन थिर होय न सत सुख पाई॥

चौ० — ढ्ढा ढांको पाप न अपना।
दोष पराय न मुख सो जपना॥
सत्य बचन सोई तप जानो।
सत बिन कृत निज सफल न मानो॥

ढ्ढा ढोल बजाय के, शिर पर घूमत काल।

सिया रामको भजन कर, मिथ्या सब जगजाल ॥

श्री ग्रन्थ करता जी ढकार व्यंजन द्वारा संकेत करते हुये कहते हैं कि अपने में पाप। चरण हों वह सब श्री प्रभु के सामने खुलासा कह दो, उसको झूठ बोल कर नहीं ढांको, अर्थात छिपाओ नहीं। और दूसरे के पाप को देख कर, जान कर भी मुख से जल्दी कहने का साहस न करो। अर्थात् न कहो, क्यों, कि बचन बोलना ही सच्चा तप है। (सत्यं ब्रूयात प्रिय ब्रूयात न ब्रूयात सत्तमप्रियम्) यानी बिना सत्य के अपना सत कर्म किया हुआ भी सफल न समझो।

ढोलबजा कर यानी खूब जनाकर सिरपर काल आठों पहर लगा हुआ है। और अपना काम कर रहा है। अपने समय स्थिति को छिन छिन में खा रहा है। यानी नष्ट कर रहा है। ये तो निश्चय है कि संसार से मरकर अवश्य जाना है। यहां की कोई वस्तु अपने साथ नहीं जायेगी। अपना किया हुआ कर्म ही साथ जायगा। और आप ये देखते हैं कि लड़के, बूढ़े, जवान सब जा रहे हैं कोई भी हो सबको काल के मुख में जाना पड़ता है अर्थात फिर जिस वस्तु के लिये आठों पहर मरते हैं। श्रम करते हैं। वह सब यहीं पर पड़ी रह जाती है। एक डोरा भी कमर का साथ नहीं जाता फिर ऐसा जानते हुये भी क्यों ऐसा चिन्तामणि सदृश भगवत को प्राप्त करने वाला समय जानकर खोया जाय। इससे श्री सीताराम जी का भजन भक्ति, स्मरण, करते हुये रहना चाहिये। और सारे संसारी जालों को जो देखने में आ रहे हैं, झूठे समझना चाहिये। इसमें लगकर किसी में भी आसक्त न होना चाहिये। ये तात्पर्य है।

गुप्त पाप सब अघ की मूला।
हरण सुभाग देन बहु शूला ॥
गुप्त भजन सब सुख कौ हेतू।
भाग बढ़ांवन करन सचेतू ॥

चौ०—नन्ना नमो संत गुरु चरणा।
जो पै भव समुद्र को तरना ॥
सीता पति पद सेवो भाई।
परमारथ पथ मनहिं लगाई ॥

नन्ना नट इव नांचते, वीते जन्म अनेक।
कछु न लाग्यो हाथ तोहि, अब हिय धरो विवेक।

नकार व्यंजन द्वारा ग्रन्थकार आदेश करते हैं कि यदि आप संसार रुपी समुद्र से पार जाना चाहते हो, अर्थात संसार से मुक्त होकर श्री प्रभु को प्राप्त करना चाहते हो, तो श्री संत गुरु चरणों में नमस्कार करो। अर्थात संत गुरुओं से नत मस्तक होते हुये; संत गुरुजनों में उच्च भाव रक्खो। तो तुम जिस भले कार्य को करना चाहोगे, उसमें सफलता को प्राप्त होगे। और संसार सागर से सहज में तर जावोगे। सन्त गुरुओं को नमस्कार कर फिर श्री सीताराम जी के चरण कमलों में तत्पर हो जाओ। और परमारथ, पर उपकार, यानी दूसरे के हित करने में मन को लगाओ। अष्टादशपुराणाणां

व्यासस्य वचनं द्वयम्। परोपकाराय पुण्याय पापाय पर पीडनम्। ये तो परमारथ हुआ। और—

"सखा परम परमारथ येहू। मन क्रम वचन राम पद नेहू॥" जो परम अर्थ को प्राप्त करने वाला रास्ता है उसी में मन को लगाओ। स्वार्थ निज सुख है। परमारथ पर सुख है। नट की तरह नाँचते २ अनेकों जन्म बीत चुके हैं। ये भी जन्म बीतता जा रहा है। अभी तक कुछ भी तो हाथ नहीं लगा। अब सावधान होकर चेत जाओ। अर्थात सम्हल जाओ। अपने हृदयके बीच में विवेक को धारण कर बिचारो तो, कि हमको क्या करना चाहिये और हम क्या कर रहे हैं। हमारा खास कर्तव्य क्या है उसको समझकर हमको हृदय में धारण करना चाहिये। और बहरंग उसी कर्तव्य में आरूढ़ हो जाना चाहिये। ये भाव है।

धरि विवेक बंधन ते छूटो।
करि हरि भक्ति राम रस लूटो॥

चौ० — तत्ता तीन इर्षणा त्यागो।
सुत बित लोक न चित अनुरागो॥
राम भजन कर काल बिताओ।
फिर जननी के जठर न आओ॥

तत्ता तेरे तीन हित, हरि के गुरु के संत।
इन तीनों की शरण गहु, भटक मरो जिन अंत॥

श्री रसिक अली जी महाराज तकार व्यंजन द्वारा कहते हैं कि पुत्र, धन, लोकादि जगत में चित्त को न लगाओ। (पूर्वोक्त तीनों को देखकर, चित देकर अनुरागित न होवो। ये सब यहीं का देखने भर का तमासा है। यथार्थ में कोई अपना हितकर नहीं है। श्री रघुनाथ जी की भजन भक्ति भावना करते समय को बिताओ। जिससे फिर माता उदर में न आना पड़े। भगवान का सुमिरण कर भगवान के धाम को प्राप्त होवो। श्री गोस्वामीजी का कहना है कि; "सुत, वित, नार, ईषणा तीनी। किन कर मति इन कृत न मलीनी। यह सब माया कर परिवारा। प्रबल अमित को वरणैं पारा॥ अब और कहते हैं कि जगत के बीच में तेरे तीन हितैषी, यानी हित करने वाले हैं एक श्री हरि सर्व दुखहरने वाले, सदैव के लिये सुखी कर देने वाले भगवान हैं। और दूसरे श्री गुरु जी महाराज है। जो जगत से छुड़ाने वाले, श्री युगल महाँमंत्र राज प्रदान करने वाले, सब प्रकार से प्रभु सेवा श्रुसूखा में लगाने वाले प्रभु प्राप्त कराने वाले है। व तीसरे संत, (पर उपकार बचन मनकाया। संत सहज स्वभाव खगराया)। संत भी भगवान की ओर लगाने वाले हैं। और जगत प्रपंच को छुड़ाने वाले हैं। इससे यदि हित करने वाले तेरे परम हितैषी, परम शुभचिन्तक हैं तो पूर्वोक्त तीन ही हैं। इससे हे चेतन इन तीनों की शरण को गहकर आनन्दित होजा। दूसरे विचारो में रत होकर उनमें लग कर भटक भटक न मर। अपनी निज मनमुखता, निजटेक, ऊट पटांग चाल न चल तभी सुखको प्राप्त होगा। नहीं तो महान दुख पाकर जोनियों में, भटकना ही हाथ लगेगा अर्थात नाना प्रकार के पन्थ मार्ग हैं जो लौकिक सुख दिखलाकर जीव को फसा लेते हैं। और भ्रम मय रास्तों में भटकाया करते

हैं। जिससे अंत में अधोगति को ही जीव प्राप्त होता है।
ये तात्पर्य

हरि गुरु सन्त सहायक सांचे।
धन बड़ भागि जो इनमें रांचे॥
बिन हरि गुरु संतन के संगा।
कबहु न हों भव दुख रुज भंगा॥

चौ० — थथ्था थिर कर मनको राखो।
सीतापति सेवा अभिलाखो॥
कर श्रृंगार सु छबि अवि रेखो।
सनमुख मुकुर लाय पुनि पेखो॥

थथ्था थापो हीय में, सिय प्रीतम छबि सार॥
याहीं में रांचो भले, करि करि नव श्रृंगार

श्री ग्रंथकार जी कहते हैं कि मनको विवेक द्वारा स्थिर करके अपने बस में रक्खो। मनको बसमें करके पुनः श्री सीता पति जी (जो चतुष्ट पाद विभूती नायक परे से परे परम पुरुष श्री सीताराम प्रभु हैं, उन्हीं की सेवा करते हुये सेवा करने ही की अभिलाषा (इच्छा) रक्खो। और श्री मूर्ति विग्रह को हृदय में मानसी भाव से विराज के मूर्ती का श्रृंगार नखसे शिख तक रुचि पूर्वक कर और छबि को अवलोकन करो। पुनः मूर्ति के सन्मुख सर्वांगी आइना लगाकर, पुनः आइना में और सन्मुख

शृंगार युक्त देखा करो। प्रथम सीधी मूर्ति के ही ओर देखो, पुनः आइना सम्मुख रख, आइना में भी मूर्ति देखो, और दोनों छबियों को देख २ कर आनन्द लूटो।

उसी मूर्ति को परम शृंगार युक्त हृदय में स्थापित करो जो श्री सिया प्रीतम श्री राघवजी हैं, उन्हीं युगल जोड़ी की परम सार तत्व स्वरूपा छबि को देखो, और उसी में चतुष्ट अन्तःकरण (मन, बुधि, चित, अहंकार) लगा कर भले प्रकार से लगे रहो और सदैव ऋतानुकूल नित्य नया नया शृंगार कर करके देखते हुये दृढ़ता पूर्वक लगे रहो, किसी अपर वस्तु में चित्त को न जाने दो। बस यही सार सिद्धान्त तत्व स्वरूपा है। कहने का तात्पर्य यह है कि—

मूर्ति सुबिग्रह में नित लगनो।
प्रगट प्राप्ती जान सो जगनो॥

दद्दा दिन दिन प्रीत बढ़ावो।
सिय पिय गुण गण चित्त चढ़ावो॥
लीला ललित तहां मन रांचो।
गहो आपनो रूप सु सांचो॥
दद्दा दारुण दुखद यह, हरि माया इक सिंधु।
राम चरण बोहित तहां, सन्त मंडली बन्धु॥

दकार व्यंजन द्वारा श्री ग्रन्थकर्ता जी महाराज कहते हैं कि दिन दिन प्रीति नित नई बढ़ती ही जाना चाहिये। अर्थात

कभी कम न होने पाये। श्री सिया पिया श्री सीताराम जी के गुण गणों को चित्त में चढ़ालो। जिससे दूसरी बातें चित्त में न आवें। और श्री युगुल प्रभुन की परम सुन्दर लीला के विषय में अपने मन को तत्पर रक्खो। (श्री प्रभु की लीलाओं में ही सदैव मन को लगाये रहो।) यही अपना सुन्दर सच्चा अप है (जीव किंकर्य्य निपुण:) जीव का किंकर्य्य ही करना स्वाभाविक धर्म है उसी को ग्रहण करो इत्यादि।

यह भगवान की माया एक समुद्रवत है (मम माया दुरत्या) यह माया अत्यन्त दुख की देने वाली है। इसमें केवल श्री रघुनाथ जी के चरण कमल ही जहाज रूपा हैं, कि जिसको ग्रहण कर जीव पार हो सकता है और साधु संत मन्डली जो है वही सच्चे साथी और भाई बन्धु हैं। अर्थात् अन्य और कोई उपाय और सहायक नहीं है ये भाव हैं।

जो माया से छूटन चाहो।
तो हरि जन पद रति निरवाहो॥
और उपाय न दूसर कोई।
पूर्वाचार्य कहत सब कोई॥

धध्धा धाम राम को परतम।
और धाम नहिं लखो ताहि सम॥
निच्च अखंड महीतल राजै।
परम उपासक को सुख साजै॥

धध्धा सो नर धन्य हैं, ध्यान करैं पुनि बास।
सरयूजल को पान करि; अवध पुरी विश्वास ॥

श्री रसिक अली जी महाराज कहते हैं कि श्री राम जी का धाम जो श्री अवध धाम है। यही परे से परे धाम है। इसके समान और कोई धाम नहीं है। सदैव पृथ्वी के बीच में अखन्ड रूप से एक रस शोभित हो रहा है। जो परम उपासक जन श्री सीता राम जी उपासदेव में लगे हुये हैं तिनको ही पूर्ण सुख स्वरूप से धाम प्राप्त हो रहा है। अर्थात् नित्य धाम जो साकेत है और नैमित्यिक धाम जो पृथ्वी मण्डल में श्री अवधधाम है। इन दोनों धामों में उपासकों को भेद भाव नहीं रहता। उनको साक्षातता प्रगट हो जाती है। जो नैमित्यिक धाम में ही नित्यधाम का सुख लूटते हैं और उनको दूसरे धाम की भावना ही नहीं रहती। उनके हृदय से प्राकृतता बिलकुल निकल जाती है। ये भाव है।

अब कहते हैं कि उन जनों को धन्य है अर्थात् वो धन्यवाद के पात्र हैं जो श्री अवध का ध्यान (भावनादि) करते हैं। और श्रीअवध में निवास भी करते हैं और प्रत्यक्ष श्री सरयू जल को पान करते हुये, श्री अयोध्या पुरी का यों ही नित्य साकेत बास करते हुये विश्वास रखते हैं। इसमें उन्होंने भेद नहीं माना। एक तत्व स्वरूप मानते हैं। श्री अवधपुरी का सर्वोपरि विश्वास रखते हैं।

जेहि बिधि हृदय भाव रह जाको।
तेहि बिधि प्रगट सुःख है ताको ॥

नन्ना भव समुद्र को नावा।
हरि गुरु सन्त और नहिं दावा॥
तरो चहै भव सिन्धु अपारा।
तौ सत संगत करो बिचारा॥
नन्ना नटो न संत सों, छोड़ो कपट सुभाव।
अंत काज है संत सों संत बचन मन लाव॥

श्री ग्रन्थकार जी महाराज पुनः नकार व्यंजन द्वारा संकेत कर रहे हैं कि संसार रूपी समुद्र तरबे को अर्थात् भव पार होने के लिये, श्री हरि, श्रीगुरु, श्री सत ही दावादार निश्चय रूप दवा है और कोई उपाय नहीं है। यदि तुम भव समुद्र से तरना चाहते हो, तो सतपुरुषों की संगत करो और प्रत्येक बात में बिचार रक्खो और बिचार संयुक्त सत संगति को ग्रहण करो। तो जग अपार समुद्र से सहज में पार हो जाओगे। अर्थात निस्तार पा जावोगे।

संत जनों से नटो नहीं, यानी विरोध भाव नहीं रक्खो और छल कपट से रहित होकर सुन्दर स्वभाव से स्वाभाविक सुन्दर भाव युक्त संतों से रहा करो। संतों से ही अंत में काम पड़ता है। संतों के द्वारा ही श्री प्रभु प्राप्त होते हैं। संत सदैव पराये कार्य में अर्थात् उपकार में रत रहते हैं इससे संतों के वचनों को मन में लाया करो। जो संत कहें उसको यथार्थ ही समझ करो। अर्थात् जो संत आज्ञा दें वो मन से मानकर हृदय में रक्खा करो। ये तात्पर्य है श्री गोस्वमी जी कहते हैं

कि, "पर उपकार बचन मन काया। संत सहज स्वभाव खगराया।"

संत वेष लखि हरि सम जानो।
विनय भाव युत नत शिर मानो॥

पप्पा पांच प्रकृति तन लेखो।
ताको शांख्य शास्त्र में देखो॥
पंच विषय मन रहो लुभाई।
तामें आतम लियो मिलाई॥

पप्पा पांचो बस करो, चित समाधि ठहराय।
ज्ञान दीप ग्रन्थी लखो, छोरो भक्ति सुभाय॥

श्री रसिक अली जी महाराज पकार व्यंजन द्वारा संकेत कर रहे हैं कि इस शरीर में पंच तन मात्रा जो पंच प्रकृति मय है इसकी व्याख्या यदि देखना चाहते हो तो शांख्य शास्त्र में इसका पूरा पूरा रूप बताया गया है। अर्थात् अच्छी तरह व्याख्या की गई है। "क्षिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम शरीरा॥" (श्री गो०) इन्हीं के पंच विषयों में मन लुभिया रहा है (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध) इन्हीं में मन ने आत्मा को भी फँसा रक्खा है। पंच रस मय जीव आत्मा हो रही है। सो इन्हीं पांचो विषयों को बस में रक्खो, अर्थात् इनको अपने बस में रक्खो इनके पर बस न हो। तब चित्त पंच विषय रहित होकर ध्यान में स्थिरता को प्राप्त होवो

अर्थात ठहरो। जब चित्त ठहर जायगा तब फिर ज्ञान यथार्थ दीपक द्वारा जड़ चेतन की जो ग्रन्थी पड़ गई है उसको देखोगे और भक्त रस में तल्लीन होकर उसे छोड़ोगे, तब फिर अपने चेतन रूप को बिलग करोगे और जड़ से सम्बन्ध तोड़ोगे। तब शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति होगी, इत्यादि।

पच बिषय हरि मय दृढ़ कीजे।
निज अभिलाषसु सब भरि लीजे॥

फफ्फा फैल रहो मन भाई।
बिविध बासना रहो समाई॥
ज्ञान बिराग दोउ कर लेखो।
ताहि समेटो तब कुछ देखो॥

फफ्फा यह फल ज्ञानको, कीजे मन निज हाथ।
सो निज गुरुहि समर्प के, बस कीजे रघुनाथ॥

श्री ग्रंथकार जी महाराज फकार ब्यंजन द्वारा कह रहे हैं कि हे भाइयो मन इस शरीर का मुखिया है। सो बिविध प्रकार की वासनाओं में तल्लीन हो रहा है। यानी बासनाओं के बस होकर, फैल रहा है और बिथर रहा है। जब समटै (इकत्र) तब काम बने। और जब ज्ञान वैराग रूपी दोनों हाथ इस जीव आत्मा के मजबूत हों तब ये मनको पूर्वोक्त दोनों द्वारा समेटै, मनको स्थिर करै। तब कुछ देखने मे आवे। बिना मनस्थिर हुये कैसे कुछ देखने में आ सकता है ये तात्पर्य है।

यदि पूछिये तो यथार्थ फल ज्ञान का यही है कि अपने मनको अपने हाथ का करिये। पुनः स्थिर (अपने हाथ का मन को करके) फिर अपने जो श्री सतगुरु श्री प्रभु ओर की रास्ता को बताने वाले (लगाने वाले) हैं उनके हाथ में अपने मनको समर्पण कर दो। फिर उनकी आज्ञा से विपर्जय हो कोई काम न करो। तब फिर क्या कहना है। इस वृर्ती में रह कर निःसन्देह श्री रघुनाथ जी को अपने बस में कर लो। और जो चाहो सो उनसे प्राप्त कर लो। ये तात्पर्य है।

मन थिर कर जेहि गुरु कर दीन्हों।
तेहि पुनि सकल विभव बस कीन्हों॥

बब्बा बोलो सत्य सु वानी।
सत्य वस्तु जो लखै सो ज्ञानी॥
सत्य राम कह सब संसारा।
ऋषि मुनि योगी सिद्धि उदारा॥

बब्बा बधो न राग रजु, सुन्दर नर तन पाय।
राम सिया पद दृढ़ भजो, चित संतोषहि लाय॥

श्री ग्रन्थकार जी बकार व्यन्जन द्वारा आदेश करते हुये कहते हैं कि यदि बोलने की इच्छा हो तो सुन्दर सत्य वाणी बोलो। जो संसार के बीच में तत्व स्वरूप सत्य सार वस्तु रूपा है। वह सत्य है सार है तत्व स्वरूप है उसी को जो देखै सुनै कहै वही यथार्थ ज्ञानी है जो सत्य वस्तु को निश्चय रूप से देखकर ग्रहण

करने वाला है वही सुन्दर ज्ञानी है। सारा संसार कह रहा है कि श्रीरामजी ही सत्य हैं ऋषि धर्म ग्रहण करने वाले ऋषी गण बड़े २ मनन शील मुनीगण और बड़े २ योगी जन और बड़े बड़े सिद्ध गण और बड़े २ उदार पुरुष सब यही कहते हैं किश्री रामजी हीसत्य हैं। इसमे कहने का तात्पर्य ये है कि सब झमेलाओं को छोड़ कर नाना प्रकार के बिधि निषेध मई चिन्ता को परित्याग कर श्री राम जी का भजन स्मरण करो। सुंदर नर तन पाकर पंच बिषय रस राग रसरी में न बधो क्योंकि फिर इससे छूटना दुर्गम हो जायेगा। सुंदर दो भुज मानव शरीर पाकर, श्री सीताराम जी के पाद पद्मो को दृढ़ता पूर्वक सेवन करो, और चित्त में संतोष धारण करो, क्योंकि, बिनु संतोष न काम नसाही। काम अछत सुख स्वपनेहु नाही॥

(श्री गो० तु० दा०)

विषय असार सु मन कर भर्मा।
परमाँनद बिन मिलै न मर्मा॥
बिनि संतोष न सत सुख पावे।
अधर चाट कोउ तृप्ति न लावे॥

झम्भा धरो अधिक शिर भारा।
केहि बिधि उतरो भव निधि पारा॥
छूटे भार तजै हंकारा।
अहंकार तज ज्ञान बिचारा॥

भम्भा भल सतसंग कर, राम रूप दरसाय।
धाम नाम लीला सुमिरि, चारों चित सरसाय॥

श्री रसिक अली जी महाराज भकार व्यंजन द्वारा आदेश करते हुये कहते हैं कि शिर पर बहुत भार रक्खा हुआ है, यानी बहुत कर्म भोग भोगने के लिये बाकी हैं। किये हुये कर्मों का भार बहुत शिर पर धरा हुआ है। संसार सागर से पार किस प्रकार होओगे। हां ये उपाय अवश्य है कि अहंकार बिलकुल तज दोगे और अपने को सबसे छोटा समझोगे। महान नीच से भी नीच पापियों के नरेश, महान कुटिल से भी कुटिल जब अपने को समझोगे। किसी प्रकार भी अपने में अहं भाव न रक्खोगे, तो कर्म अवश्य छूट जायेगा। भार शिर का अत्यंत हलका हो जायेगा। यदि कहो कि अहंकार कैसे छूटेगा सो अहंकार पूर्वोक्त तरह ज्ञान बिचार द्वारा ही हटाना पड़ेगा। और अपने में अत्यंत न्यूनता भाव रखना पड़ेगा और दूसरे अत्यन्त छोटे को, बड़प्पन देना पड़ेगा। तब अहंकार से छूटोगे।

पुनः फिर अच्छे भले पुरुषों की संगति करनी पड़ेगी, तब कहीं भली संगत द्वारा श्री राम रूप का दर्शाव होगा। अर्थात् श्री राम रूप दर्श पड़ेगा। फिर श्रीराम जी के रूप, नाम लीला, धाम को दिव्य सच्चिदानन्द बिग्रह मान के सुमिरन करोगे। सेवा भजन में चारों के लगोगे। तब चारों का आनंद चित्त में सरसा जायेगा। अर्थात् श्री रूप के चिन्तवन से रूप का, श्री नाम के रटन चिन्तवन से नाम का और लीला के श्रवण, दर्शन चिन्तवन से लीला का, श्री धाम में निवास करने

चिन्तवन से धाम का, यानी चारों का चित्त में रसानन्द सरसा जायेगा। अर्थात् भर जायेगा। इत्यादि। राम नाम रूपंच, लीलाधाम परात्परं। ये ते चतुष्टयं नित्यं सच्चिदानन्द बिग्रहं।

नाम रूप लीला चित धारो।
धाम बास पर सर्वस वारो॥

मम्मा मणि मानक अरु कंकर।
सममाने बिराग जब अन्तर॥
अस बिराग तब होय जो साँचा।
सीतापति पद जब मन राँचा॥

मम्मा मन को बांध के, ज्ञान महा बिष देहु।
फिर नहिं जीवै जगत बिधि, तब बिराग सुख लेहु॥

श्री ग्रन्थकार जी महाराज मकार व्यंजन द्वारा संकेत करते हुये कहते हैं कि जब अन्तःकरण से वैराग्य जगत के विषय से, और इन्द्रियों के विषयों से हो जाता है। तब मणि, मानिक, हीरा, जवाहर आदि और कंकड़ पत्थर दोनों समान देखने में आते हैं। दोनों में कोई भेद भाव नहीं समझ पड़ता है और इस प्रकार का वैराग्य तभी सांचा हृदय में होता है। जब श्री सीता राम जी के चरण कमलों के प्रेम में मन पूर्ण रूप से रांच जाता है। अर्थात् पूर्ण रूप से रंग जाता है। इससे अब इस मन को बांधकर, अर्थात् स्थिर करके इसे सत्य ज्ञान रूपी महा बिष

को पान कराइये । तब फिर ये जगत के बीच में जीवित नहीं रहेगा । तभी बैराग का पूर्ण सुख प्राप्त होगा। अर्थात् जो सच्चा सुख कहलाता है सो प्राप्त होगा।

मन की कही न कछु हिय धरिये।
मनयाई प्रभु पदरत करिये ।।

यय्या या में जस जग होई ।
चलो चाल गहि नीति जो सोई ॥
नीति छांड़ एक पांव न धरिये ।
सत संगति बिबेक अनुसरिये ।

यय्या जलको नहाइबो, तन पवित्र जिय होय ।
ज्ञान वारि अन्हवाइये, तब आतम शुचि जोय ॥

श्री रसिक अली जी महाराज यकार व्यंजन द्वारा कहते हैं कि जिस प्रकार से जगत के बीच में, यश अर्थात् कीर्ति हो वही चाल को चलो । नीति पथ को पकड़े रहो अर्थात् नीति पथ को ग्रहण किये हुये जिस प्रकार जगत के बीच में सुन्दर यश प्राप्त हो । वही रास्ता चलिये और एक पग भी नीति को त्याग मार्ग नहीं चलिये और सतपुरुषों की संगति में रहकर विवेक पूर्वक अनुकरण करिये । अर्थात् बिवेकानुसार चलिये और विवेक युत रहिये ।

अर्थात् जिस प्रकार जल से स्नान करने से शरीर

पवित्र हो जाता है और कुछ नयी शान्ति सी आ जाती है। तिसी प्रकार ज्ञान रूपी निर्मल जल से अर्थात् ज्ञानाकार तदाकार रूपा जल से आत्मा के स्नान कराने से यानी ज्ञान मय वृत्ति (स्वभाव) रखने से ज्ञानरूप स्नान आत्मा को कराने से, आत्मा परम पवित्र देखने में आती है। लौकिक जल से शरीर के स्नान कराये जाते हैं और पारलौकिक ज्ञान जलसे आत्मा के स्नान कराये जाते हैं। तब आत्मा पवित्र होती है और लौकिक ज्ञान में रहने से अपवित्र सी ही दिखती रहती है ये भाव हैं।

प्रभु स्वरूप गुण गण को ज्ञाना।
आतम अमल करन स्नाना ॥

रर्रा रस परसन को त्यागो।
राम भजन रस में अनुरागो ॥
वा रस तें बाढ़ें सब रोगा।
राम भजन रस सुख संयोगा ॥

रर्रा रात अज्ञान है, नासैं दृष्टि बिवेक।
सत गुरु ज्ञान बिहान है, लखो रूप निज एक ॥

श्री ग्रन्थकार जी महाराज रकार व्यंजन द्वारा संकेत करते हुये कहते हैं कि आप (शब्द, स्पर्श, रूप, रस गंध) यह प्राकृत इन्द्रिय विषय मई पंच रसों को त्यागो। इन सब में आसक्तवान न हो जावो और सब रसों में स्पर्श रस जो विषय

भोग है, इसके त्यागे बिना तो कुछ बनेगा ही नहीं। इसको तो अवश्य त्यागो और चारों रस शीघ्रता से च्युत नहीं कर सकेंगे। अधो इन्द्री भोग तो तुरन्त ही चेष्टा नष्ट करके संस्कार को ही बिगाड़ देगा। यदि तुम आनन्द भोग में ही लगना चाहते हो, तो श्री राम भजन मई जो रस है। इसी रस में लगो और इसी में अनुराग करके आशक्त हो जाओ। उस इन्द्री विषय रस में लगने से तो, तुम्हारे शरीर में नाना प्रकार के रोगों की बृद्धि होगी और श्री राम भजन रस सुख में लगोगे तो यथार्थ सुख का संयोग होगा। अर्थात् भगवत प्राप्ति होगी, जो यथार्थ सुख स्वरूपा है।

इससे पंच रस भगवान मय ही रक्खो, भगवान के गुण गण रूपी शब्द सुनो, और भगवान के मिलने को स्पर्श रस मय संयोग शृंगार मयी के लिये व्याकुल होवो। भगवान के रूप में ही आशक्ति को धारण करो। भगवान के ही भोग लगे षट रसमय प्रसाद को पान करो। भगवान की ही चरण कमलोंकी व मालाप्रसादी की सुगंधी ग्रहण करो। यही सब श्री राम भजन मयी रस सुख संयोग को ग्रहण करो। इससे भगवत प्राप्ति का संयोग होगा। जो जीव का यथार्थ सुख स्वरूप है। अज्ञान रूपी रात है, जो विवेक रूपी दृष्टि को नाश करती है अर्थात् विवेक रूपी दृष्टि नही रहने देती है और सतगुरु उपदेशमय जो ज्ञान है, सतगुरु महाराज का बताया जो भगवत सम्बन्धी ज्ञान उपदेश भक्ति मय लगनो है, वही सबेरा है। जो अपने स्वरूप का प्रत्यक्ष सुख प्राप्त कराने वाला है। जब सबेरा हुआ तब दर्शन होने लगा। "सेवक सेव्य भाव बिनु, भव न तरिय उरगार। (श्री० गो० तु०) अपना सेवक रूप देखो, और समस्त भगवान मय समिष्टि रूप को देखो, सो

सब बन जायेगा। (मैं सेवक सचराचर रूप रास भगवंत) बस इसी सिद्धान्त के अन्दर सब हो गया। ये भाव हैं।

तत सुख रूप सु निज सुख रूपा।
जग प्रभु चिंतन परम अनूपा ॥

लल्ला लच्छ करो जिय सोई ॥
जो पुरान श्रुति संमत गोई ॥
लक्ष न होय सो बिन सतसंगा।
सो सतसंगत जहँ सब अंगा ॥

लल्ला लाखन बात तजि एक बात उर धार ॥
रामभजन सतसंग करि हो भवसागर पार ॥

श्री रसिक अली जी महाराज लकार व्यंजन द्वारा, संकेत करते हुये कहते हैं कि प्रथम २ हृदय के वास्ते एक लक्ष ठिकाना बनाओ। जहां जिसमें चतुष्ठ अन्तःकरण लगाया जाय, अथवा लक्ष रूप वस्तु को हृदय से समझो, जो पुराणों में सार रूपा श्रुति (वेदों) का सम्मत छिपा हुआ है। परन्तु ये बात तो जरूरी है कि अपने आप मन मुखी अवस्था से लक्ष नहीं समझा जाता है। यदि समझ में आ भी जाता है तो संदेह बनाही रहता है। इससे लक्ष (ठिकाने) का बिना सतसंग के बोध नहीं होता और फिर वह सतसंगति भी जल्दी प्राप्त नहीं होती। इससे सतसंगति वो है जहाँ पर सब अंगों का

सतसंग प्राप्त हो। कोई सतसंग का अंग बाकी न रह जाय कि जिसके लिये दूसरी जगह भटकना पड़े। नाम, रूप, लीला, धाम, ये चारों भगवत स्वरूप मय का पूरा २ स्वरूप महात्म्य के लक्ष का पूर्ण बोध प्राप्त हो जाय, जिसको सतसंगति कहते हैं। यदि सब अंग सतसंगति के पूर्ण रूप से न प्राप्त हो सकें तो लाखन बातों की एक सार बात बतलाते हैं कि लाखों बातों को छोड़कर, एक बात हृदय में धारण करना चाहिये कि श्री रामजी का भजन सेवन सुमिरण करते हुये सत पुरुषों की संगति करने से ही सब काम बन जायगा और संसार सागर से पार हो जाओगे। यानी मुक्त हो जाओगे। प्रथम विवेक अंग है पुनः वैराग अंग है। पुनः उपासना अंग है और पुनः नाम निष्ठा अंग है और पुनः विरह अंग है यही पांच अंगों के क्रम से जब जीव के हृदय में विवेक प्राप्त होते हैं तब जीवात्मा भगवत प्राप्ति को प्राप्त होती है।

सत गुरु शिख रत परम ठिकाना।
या बिन कोउ कछु हाथ न आना॥

बब्बा बास दुष्ट सँग त्यागो।
दुष्ट बास जानो सम आगो॥
सदा बास संतन में कीजे।
सदा मोद पुन दोष जो छीजे॥

बब्बा बसत जो संत में, सो यश भाजन होत।

दुष्ट पास दुख दान पुन, बढ़त अयश को गोत ॥

श्री रसिक अली जी महाराज धकार व्यंजन द्वारा संकेत करते हुये कह रहे हैं कि दुष्टों से संग को सदैव परित्याग किये रहो और जो दुष्ट हृदय यानी कठोर हृदय वाले, दया रहित जनों का निवास स्थान अपने समीप न रक्खो। न अपने स्थान में दुष्ट जनों को रक्खो। क्योंकि दुष्टों का बास समीप रहने से तुम निश्चय करके जानो कि प्रज्वलित अग्नि ही पास में है। न मालूम किस समय अपने सहित निवास स्थान को जला दे। इससे दुष्टों का संग भूल कर भी न करना। यदि किसी का संग ही करना चाहते हो तो निर्भय निःसंदेह सन्त जनों के समीप में ही सदैव रहो। संत सज्जनों को अपने पास भी सदैव रक्खो। दुष्टों को पास में रखने से, व उनके पास रहने से सदैव अमंगल और दोष दुख ही प्राप्त होगा। चैन नहीं मिलेगा। संत सज्जन के पास रहने व अपने पास रखने से सदैव भीतर बाहर की इन्द्रियों द्वारा आनन्द ही मिलेगा और जो पातक दोष होंगे वे भी नष्टता को प्राप्त हो जायेंगे और जो सज्जन जन संतों में ही रहते हैं। और संतों की संगत सदैव किया करते हैं, और संतों के निकट ही निवास रखते हैं। सो वह जन यश कीर्ति के भाजन हैं। अर्थात् कीर्ति पात्र होते हुये ही जगत में भी यश भाजन होते हैं। यश मई ही अपना और अपने संगियों का उत्साह बढ़ाते हैं और जो दुष्ट अपने पास में रहे व दुष्टों के पास आप खुद जाकर रहें तो सदैव दुख का ही दान देते हैं। दुख ही बांटते रहते हैं और दुष्टों के संग से जगत के बीच में अयश

ही बढ़ता है और अयश का संस्कार ही प्रबल होता है ये भाव हैं। इससे

भल संगत निसि वासर करिये।
दुष्ट संग नहि कर परिहरिये ॥

शश्शा षट शरणांगत धारो ।
मन को प्रभु अनुकूल सम्हारो ॥
जो प्रतिकूल कर्म सब त्यागो ।
मम रक्षा प्रभु सों यह मागो ॥

शश्शा मन को सरल कर, तजो क्रूर ब्योहार।
तब प्रभु को प्रिय लागिहो, सन्त बचन निरधार ॥

श्री रसिक अली जी महाराज शकार व्यंजन द्वारा आदेश करते हुये कहते हैं कि षट शरणागतों को धारण करो। अर्थात इनके धारण किये बिना पूरा नहीं पड़ेगा। यानी यथार्थ आनन्द को नहीं प्राप्त कर सकोगे। प्रथम मन को श्री प्रभु अनुकूल सम्हालो (रक्खो) अर्थात् आज से हम जो कुछ करेंगे श्रीप्रभु के अनुकूल ही करेंगे चलेंगे। यह प्रभु अनुकूल चलने का संकल्प करो। (आनु कूलस्य संकल्पा) पुनः (प्रति कूलस्य वर्जनम) श्री प्रभु के प्रतिकूल कर्मों का त्याग, अर्थात जो २ श्री प्रभु के प्रतिकूल कर्म हों उनको एक दम त्याग

करना और श्री प्रभु हमारी अवश्य रक्षा करेंगे. इस प्रकार अपने हृदय में रक्षा में विश्वास रक्खो, हे नाथ मैं आपका हूँ मेरी रक्षा आप कीजिये आप को छोड़ कर मैं किसके पास अपनी रक्षा कराने जाँऊ मेरा संसार में बैठा ही कौन है (रक्षतीति विश्वासौ) आदि यह षट शरणागति धारण करो यह कह आये हैं, और शरणार्गति तीन ही कहते हैं। इससे तीन को और अध्याहार (स्मरण) कर लेना चाहिये। अर्थात् तीन के कहने से सबको समझ लेना चाहिये ॥ इत्यादि ॥ अपनी नीचता दीनता को भगवान मे साफ २ कथन करना और भगवान की ऊचता परम सामर्थता महान कृपालुता, महान कृतार्थता महान कृतज्ञता वर्णन करना (गोप तृत्व वर्णं तथा इसी को गोपतृत्व शरणागत कहते हैं अपनी गोप्य २ बातों को श्री प्रभु से साफ कह देना और श्री प्रभु के गोप्य २ सिद्धान्त जीवन कृतार्थता सम्बन्धी विनय पूर्वक श्री प्रभु से कहना। पुनः पांचवी कार्पण्यता) सदैव नीचानुसंधान में ही तत्पर रहना। सब जीवों से अपने को छोटा समझना। किसी अंश में अहंकार न दर्साना। छठवीं आत्म निवेदन शरणार्गति करना। आत्मा को भगवान के ऊपर ही निछावर करना। उन्हीं का भोग इसको समझते रहना। श्री प्रभु को इसका भोक्ता समझना। इसेही षटवी आत्म निवेदन शरणार्गति कहते हैं। (आत्म निर्क्षेप कारपण्ये, षट विधः शरणागतिः) पूर्वोक्त प्रकार षट शरणार्गति को प्राप्त कर पुनः मन को अत्यन्त सरल सीधा शुद्ध बनाये हुये टेढ़े क्रूर व्योहारों को सदैव छोड़े रहना। नहीं ग्रहण करना। जब पूर्वोक्त प्रकार रहोगे तब श्री प्रभु को प्यारे लगोगे। और तभी श्री प्रभु को प्रिय होगे। इस प्रकार

श्री वाल्मीकि शोध संस्थान अयोध्या श्री मणिराम दास छावनी सेवा ट्रस्ट

सन्तों ने निर्णय किया है अर्थात् निश्चय किया है। सन्तों ने माना है।

सूधो मन सूधे वचन, सूधी सब करतूत।
तुलसी सूधी सकल विधि, रघुवर प्रेम प्रसूत॥
(गो० तु० दा०)

सत सूधो स्वभाव रख भाई।
छलमय वचन न कहै बनाई॥
प्रभु को जन प्राणन सो प्यारो।
निर्छल जन को प्रभु रखुवारो॥

षषा षरो सोइ प्रभुको जन।
प्रभु को अरपे निज तन मन धन॥
प्रभु सेवा तज अपर न काजा।
प्रभु ही को माने निज राजा॥

षषा खेल सबै तजै, जहां मिले ब्योहार।
निर्मल मग में पग धरे, जहां सहज पर चार॥

श्री ग्रन्थकार जी महाराज षकार व्यंजन द्वारा आदेश करते हुये कहते हैं कि श्री प्रभु का वही षरा अर्थात् चोखा

भगत जन है जो अपने श्री प्रभु को अपना सब तन मन धन अर्पण करदे। अपना पन के लिये कुछ भी अपने पास न रक्खे। और श्री प्रभु की सेवा सुमिरन भजन छोड़कर कोई दूसरा कार्य अपने लिये न रक्खे और अपने श्री प्रभु को ही अपना सर्वस्व राजा मानै और आप प्रजा वत सेवा सुश्रूषा में आज्ञा में तत्पर रहे। ये भाव है। जावत जितने खेल तमासे हैं तिन सब को त्याग दे। किसी को आँखो से न देखे और जहां—इष्ट मिलै अरु मन मिलै, मिलै रहस रत रीति। तुलसी तहाँ निःशंक होय, करिये दृढ़ कर प्रीति॥ अपना यथार्थ व्यवहार जहां मिल जाय वहां पर प्रीति करना, और सहज उठन बैठन बोलन, चालन का प्रेम नेम रखना। सदैव निर्मल बिकार रहित रास्ते में पांव रखना। कुमार्ग के ओर देखना भी नहीं। सुन्दर भली राह में ही तत्पर रहना। जिसमें तत्पर रहने से अर्थात् जिस मार्ग के चलने से सहज ही में अर्थ धर्म काम मोक्ष चारों पदार्थों को प्राप्त करना।

श्री हरि सुमिरन करते रहिये।
बिन प्रभु सुमिरे चैन न लहिये॥

जो चाहिये सब विधि कुशल, हरिभजन को नहि छोड़िये।
मन बचन कर्म लगाय सब दिन, सुरति प्रभु में जोड़िये॥
छिन भंग फोटक भर्म में, जग की प्रतीत न कीजिये।
परम आनन्द सुःख लह, नर बर जनम फल लीजिये॥

जो सुनि गुन समझै सबहि, धारण करै न बात।

निश्चय तेहि शिर जानिये, अति अभाग सरसात ॥

सस्सा सब अपने मन माँही ।
एकहु अंग ऊनता नाहीं ॥
ये विवेक निर्मल नहिं भाई ।
प्रथम दीनता मन नहिं आई ॥

सस्सा सब सिद्धान्त यह, कह आये सो धार ।
ककारादि यों बरन में, बिबिध बचन निरधार ॥

श्री रसिक अली जी महाराज सकार व्यंजन द्वारा आदेश करते हुये कहते हैं कि सम्पूर्ण मन के बीच में देखता रहे। अर्थात् देखे कि हमारे मन में श्री प्रभु के प्रेम पथ में किसी प्रकार से किसी अंग की प्रेम में न्यूनता तो नहीं है। क्योंकि सब अंगों से श्री प्रभु में लगना चाहिये। जैसा कि पूर्व में कह आये हैं। पुष्टि के अर्थ फिर कहते हैं। नेत्र से श्री प्रभु का स्वरूप नख से शिख तक देखना, कानों से श्री प्रभुमय चरित्र सुनना। मुख से श्री प्रभुमय चरित्र कहना अर्थात् गावना। शिर से सदैव नत भाव रहना। हाथों से पैरों से सदैव सेवा करना, और सज्जनों की ओर चलना, तुलसी, पुष्प, फल फूल जल भगवत सेवार्थ लाना। मन से श्री प्रभु को मनन करना। चित्त से श्री प्रभु का चिन्तवन करना, बुद्धि से श्री प्रभु में निश्चय करना। अहंकार से श्री प्रभु में ही लगना। इत्यादि

सर्व अंगों से श्री हरि सेवा में ही तत्पर रहना। दीनता विनम्रता से ही सब सद्गुण हृदय में प्रवेश करते हैं। अहंकार के कारण ही कोई सद्गुण हृदय में नहीं निवास करते हैं ये तात्पर्य है।

यदि सबसे प्रथम दीनता यानी नीचानुसंधान मन में नहीं आया तो कुछ नहीं हुआ। स अभिमान किसी पारलौकिक काम को करना इसको निर्मल विवेक नहीं कहते हैं। निर्मल विवेक वही है जो समस्त जीवों से नम्र व्यवहार स्वार्थ रहित करना। किसी से भी अहंकार किसी बात में न आने पावे। इस बात की बहुत सम्हाल रखना, इत्यादि। अब ग्रन्थकार जी कहते हैं कि जो सर्व सिद्धान्तों को ककारादि व्यंजनों द्वारा कह आये हैं। उन सब सिद्धान्तों की बातों को आप सब धारण कीजिये। जो नाना प्रकार वचन द्वारा सिद्धान्त कहे गये हैं। उनको समझ कर ग्रहण कीजिये। ये आपके कहने का तात्पर्य है।

जो श्री हरिजन संतन बानी।
सुन गुन धर हिय निज हित जानी॥

हहहा हाथ लगे नहिं तेरे।
पायो तूं अपने कर हेरे॥
तन लायो सोऊ धर जैहै।
कर सुकृत सोई पुन पैहै॥

हहहा जान हुन्डी हिये, युत सत्कार सुदान।
दान करे मन सुद्ध सों, सोइ आपनों मान॥

श्री रसिक अली जी महाराज हकार व्यंजन द्वारा संकेत करते हुये कहते हैं कि हम बारम्बार कहते हैं बिना कुछ किये तेरे हाथ कुछ भी नहीं लगेगा। क्योंकि तूने जो पाया है। सो अपने हेरने खोजने से ही पाया है। बिना खोजे बिना चाहे कोई को कुछ नहीं प्राप्त होता। यह तूं निश्चय करके जान। हां शरीर जरूर तुझको श्री भगवान की अकारण करुणा कृपा से मिला है, सो इसको भी तूने प्राप्त किया। परन्तु इसकी कदर न जानी। इसको भी यहीं का यहीं धर जायगा। ये भी तेरे साथ जाने वाला नहीं है। यदि तूं इसको सार्थक करना चाहता हो तो इससे सुन्दर कर्मों को कर भगवत भागवत मई पथों को ग्रहण कर चल। फिर भी जो कर्म करने को बाकी रह जायगा। तो ये शरीर फिर मिलेगा। बिना शुभ कर्म किये बिना ये भी व्यर्थ ही तेरे हाथ से छूट जायगा और फिर नहीं मिल सकेगा। ये भाव है। हम फिर फिर कर कहते हैं कि सुन्दर सत्कार युक्त जो दान करना है सो कर यह तेरे हृदय में ही दर्शनीय हुन्डी रक्खी है जो कि ततकाल फल देनेवाली है। जो तूं शुद्ध मन से दान करेगा, वही तेरा तुझे प्राप्त होगा और तेरा मन भी शुद्ध बिकार रहित हो जायेगा। अर्थात् जो कुछ पर उपकार हाथों से कर धर लेगा वही अपना है और तो कुछ अपने साथ कोई वस्तु जाती नहीं है। ये दान विषय तात्पर्य दिखाये। "येन केन बिधि दीन्हें दान करे कल्यान।"

(गो० तु० दा०)

मन प्रसन्न कर जों भलदाना ।
सो मन शुद्ध करन कल्याना ॥
(टी० ब०)

क्षक्षा क्षमा शील गुण धारो ।
सिया राम गुण बचन प्रचारो ॥
सत संगतहिं करो मन लाई ।
तब या योग बनै सब आई ॥

क्षक्षा क्षमा न छोड़िये, कोइ देवे दुख आय ।
सो पावे फल आपनो, सज्जन सुखी सदाय ॥

श्री रसिक अली जी महाराज क्षकार व्यंजन द्वारा आदेश करते हुये कहते हैं कि जो दिव्य गुण (क्षमा, शील, सत्य, दया, सम और संतोष) आदि हैं इनमें क्षमा और शील रूपी दिव्य गुणों को धारण करो । इसके धारण करने से ही सब सत गुणादिक आ जायेंगे । ये भाव है और क्षमा शीलगुण धारण करके पुनः श्री सीताराम जी के गुणगणों को बचन द्वारा उच्चारन करो प्रचार करो । अर्थात् जगत के दुखी जीवों को युगल सरकारी स्वभाव गुण बताते प्रचार करते हुये जीवों को श्री सीताराम जी के ओर लगाओ ये भाव है और सत पुरुषों

की संगति मन लगाकर प्रेम के साथ करो। तब पूर्वोक्त दिव्य सत गुणों का प्राप्त होने योग थोग आकर बनेगा। क्योंकि बिना सतसंगति के सदगुणों को ग्रहण करना महा दुर्लभ है। ये तात्पर्य है। परन्तु इतना ध्यान रहे कि कोई भी कैसा भी दुख अपने को आकर देवे; पर क्षमा का आधार (आश्रय) नहीं छोड़ना चाहिये। क्योंकि अपने को सताने वाला दुख देने वाला अपने कर्मों के किये हुये फल को अपने आप से पा जायेगा और सज्जन सहनशील यानी सहने वाला, सुख को प्राप्त होगा। यह निश्चय रक्खो कि सज्जन सतकर्म धर्म में प्रवृत्त होने वाला कर्म धर्मवान कभी किसी प्रकार दुखी ही नहीं बना रहेगा। सदा सुखी ही रहेगा। यानी कर्म भोग सज्जन का दुख पाने का होगा सो वह कर्म भोग कर आनन्द पूर्वक सदैव के लिये, निसकंटक सुखी हो जायेगा और सुखी ही रहेगा। ये भाव है।

पाप कर्म को फल दुख रूपा।
पुन्य कर्म को फल सुख रूपा॥
पूर्व पाप से ही पापहिं रति।
पुन्य से पुन्य प्रभु कृपा प्रभू गति।

त्रत्रा त्राहि २ नित करिये।
हरि जन रक्षक मन में धरिये॥

जनम मूल आशा जग तजिये।
सहजानँद सजिये प्रभु भजिये ॥

त्रास न कोइ कि कीजिये, गह प्रभु बल गुण ऐन।
त्रास आस हरि कृपा की, परमांनद सुख देन ॥

अकार व्यंजन द्वारा श्री रसिक अली जी महाराज इस दीन के मिस आप कहते कहवाते हैं कि भगवान से प्रार्थना करते हुये त्राहिमाम २ अर्थात मेरी रक्षा २ कीजिये। इस प्रकार सदैव श्री प्रभु से प्रार्थना करते कहते रहिये। ये हृदय में मनमें निश्चय निःसन्देह रखिये, कि निज जनके रक्षा करने वाले श्री रघुनाथ जी अवश्य हैं। भगवत के जन और भगवान दोनों हरिजन के रक्षक हैं और सदैव सहायक हैं। "हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम तुम्हार सेवक असुरारी॥" (गो० तु० दा०) जनम का मूल अर्थात् जनम मरण का स्थान ये जगत है और इस जगत में बारम्बार जन्म लेना मरना आशा द्वारा ही होता है। इससे जनम मरण बारंबार देने वाली जगत की आशा निःसन्देह त्याग दीजिये और सहज रूप से बिना परिश्रम जो आनन्द प्रमोद मिले उसको ही ग्रहण करते हुये और सब दिन श्री प्रभु को ही भजते रहिये अर्थात् श्री प्रभु का ही भजन कर सहज में आनन्द प्राप्त करिये। उसी आनन्द मय भजन को सजते रहिये। यानी प्राप्त करते रहिये। श्री प्रभु का बल भरोसा

धारण कर श्री प्रभु के गुणों को ठीक हृदय में धारण कीजिए और जगत में किसी की भय न कीजिए। कहने का तात्पर्य है कि जगत की आशा त्रास दोनों छोड़कर श्री प्रभु की भय और श्री प्रभु की ही आसा कृपा की रखिये। ये दोनो बातें परम आनन्द रूपी जो सुख है उसको देने वाली हैं इत्यादि।

प्रभु की आस त्रास बल भारी।
प्रभु बिन नहिं कोउ निज हितकारी॥

ञञ्ञा ज्ञान प्रभू को रखिये।
बिन प्रभु ज्ञान न कोइ को लखिये॥
अपर ज्ञान सब प्रभुहिं छुड़ावन।
हरि जन ज्ञान सु पावन पावन॥

ज्ञान ज्ञेय ज्ञाता तिहूँ, श्री प्रभु मय नित जान।
भक्ति सु भगवत भागवत, परमांनद मय मान॥

इस दीन से (टीकाकार से) श्री ग्रंथकार जी ञा अक्षर व्यंजन द्वारा कहवा रहे हैं कि हृदय में सदैव श्री प्रभु का ही ज्ञान ध्यान रूपा रखिये। बिना श्री प्रभु ज्ञान के किसी को भी न देखिये। अर्थात जो वस्तु जिसको देखिये, उसको श्री प्रभु

मय ही देखिये, श्री प्रभु से रहित न देखिये न जानिये, अर्थात् बिना प्रभु के ज्ञान ध्यान के ऊपर कोई वस्तु कोई जन कहीं नहीं है। श्री प्रभु मय ही सब में श्री प्रभु विद्यमान हैं। "सिया राम मय सब जग जानी। करों प्रणाम जोर युग पानी ॥" (गो० तु० दा०) "देश काल दिशि बिदिशहु माहीं। कहहु सो कहा जहाँ प्रभु नाहीं॥ प्रभु व्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम ते प्रगट होंहि मैं जाना ॥ (गो० तु० दा०)

वही ज्ञान जिस ज्ञान में, प्रभु बिन अपर न ज्ञान।
वही ध्यान जिस ध्यान में श्री रघुपति का ध्यान॥

संसार में रहते हुए संसारी प्रयोजन मय थोड़ी देर के लिए छिन भंग ज्ञान ध्यान रक्खा जाता है और स्थिर अचल एक रस ज्ञान ध्यान श्री प्रभु में ही सदैव हृदय में रक्खना चाहिए। क्योंकि संसारी जो नानत्व रूप नाना प्रकार के ज्ञान हैं अर्थात जो संसारी जानकारी है। सो सब श्री प्रभु को छुड़ाने वाली है और श्री हरि का जो ज्ञान ध्यान है सो सुन्दर सब पवित्र से भी पवित्र है। श्रीहरि ज्ञान ध्यान से, श्रीहरि जन से भेंट होती है। अर्थात् जन की प्राप्ति होती है और हरि जनों के ज्ञान ध्यान से श्रीहरि जन की प्राप्ति होती है। ये भाव है। ज्ञान और ज्ञेय और ज्ञाता। इन तीनों को श्री सीताराम जी मय ही जानना चाहिए। ज्ञान क्रिया में लेने से भक्त स्वरूप

होता है ज्ञेय जिसकी भक्ति की जाती है वह भगवान है ही और जो ज्ञाता है ज्ञान जानने वाला भक्ति करने वाला है वह तो भगवत भक्त है ही। यह पूर्वोक्त त्रिपुटी तीनों भगवान की भक्ति भगवत स्वरूपा ही है। भगवान भगवान हैं ही और भगवान की भक्ति करनेवाला भागवत भगवत स्वरूपा है ही। इससे यही तीनों परम आनन्द मयी श्री प्रभु मय सदैव जानना मानना चाहिए। ये सिद्धान्त ही है। ये भाव है।

भक्त भक्ति भगवंत गुरु, चतुर नाम वपु एक।
इन सबके बन्दन करें, नासैं विघ्न अनेक।
(गो० तु० दा०)

बिन प्रभु छिन जीवित नहिं रहिये।
हरि के हो हरि कीरति गहिये॥
इत्यादि।

श्री स्वामी १००८ रसिक अली जी महाराज कृत
ज्ञान बारह खड़ी समाप्त

श्री १०८ राजकिशोरीबर शरण (श्री स्वामी परमानन्दजी) कृत
सुजन प्रबोधनी सरल टीका समाप्त।

महर्षि वाल्मीकि शोध संस्थान
15314
अयोध्या
श्री मणिराम दास छावनी सेवा ट्रस्ट

—: हर प्रकार की सुन्दर छपाई के लिये :—

आनन्द प्रेस, अयोध्याजी

को स्मरण रखिये ।

15314